विषय-सूची

वेदान्त-धर्म

वेदान्त ही ज्ञान और शक्ति की राशि है

हिन्दू

यह विषय बहुत बड़ा है, लेकिन इसके लिये समय बहुत थोड़ा है। एक भाषण में हिन्दू धर्म की पूरी व्याख्या करना असंभव है। इसलिये मैं आप लोगों से अपने धर्म के मूल तत्वों को जितनी सरल भाषा में कह सकता हूँ, बतलाऊँगा। जिस 'हिन्दू' नाम से परिचय देने की प्रथा चल पड़ी है, उसकी इस समय कोई सार्थकता नहीं रह गई है, क्योंकि इस शब्द का अर्थ है, जो लोग सिन्धु नदी के पार रहते हैं। प्राचीन पारसी लोगों के उच्चारण भिन्नता से यह सिन्धु शब्द हिन्दू रूप में परिणत हो गया है। वे लोग सिन्धु नद के उस पार के रहने वाले सभी लोगों को हिन्दू कहा करते थे। इस प्रकार 'हिन्दू' शब्द हम लोगों के पास आया है। मुसलमानी राज्य आरंभ होने पर हम लोगों ने इस शब्द को अपने ऊपर प्रयोग करना आरंभ किया। मैं यह नहीं कहता कि इस शब्द का व्यवहार करने से कोई हानि है, लेकिन मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इस शब्द की अब सार्थकता नहीं रह गई है। क्योंकि आप सभी लोग जानते हैं कि वर्तमान काल में सिन्धु नद के इस पार के रहने वाले प्राचीन काल की तरह एक धर्म को नहीं मानते। इसलिये

इस शब्द से केवल हिन्दू मात्र का बोध नहीं होता, वरन् मुसलमान, इसाई, जैन तथा भारतवर्ष के अन्यान्य मतावलम्बियों का भी बोध होता है। इसलिये मैं हिन्दू शब्द का व्यवहार नहीं करूंगा। तब प्रश्न यह उठता है कि किस शब्द का व्यवहार किया जाय। हम लोग वैदिक (अर्थात् जो लोग वेद मत के मानने वाले हैं) शब्द का व्यवहार कर सकते हैं अथवा वेदान्तिक शब्द का व्यवहार करने से और भी अच्छा होगा। जगत के प्रधान प्रधान धर्म वाले ग्रंथ विशेष को प्रामाणिक मानते हैं। उन लोगों का ऐसा विश्वास है कि ये ग्रंथ ईश्वर अथवा दूसरे किसी अतिप्राकृत पुरुषों के वाक्य हैं, इसलिये ये ग्रंथ उनके धर्म की भित्ति हैं। प्राश्चात्य देश के विद्वानों का मत है कि इन सम्पूर्ण ग्रंथों में हिन्दू लोगों का वेद ही सब से प्राचीन है। इसलिये वेद के सम्बंध में कुछ कुछ ज्ञान रखना आवश्यक है।

वेद नामक शब्द समूह किसी पुरुष के मुँह से निकला नहीं है। उसका सन् तारीख अब तक भी निश्चित नहीं हुआ और न कभी निश्चित हो सकता है। हम लोगों की तरह वेद अनादि अनंत हैं। एक खास बात आप लोगों को याद रखने की यह है कि संसार के अन्यान्य मतावलम्बी ईश्वर नामक व्यक्ति अथवा ईश्वर के दूत या उसके भेजे हुए पुरुष की वाणी बतला कर अपने धर्मशास्त्रों की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं, लेकिन हिन्दू लोग कहते हैं कि वेद के लिये दूसरा कोई प्रमाण नहीं, वेद स्वतःप्रमाण हैं। क्योंकि, वेद अनादि अनन्त हैं,

वेद

वह ईश्वर की ज्ञानराशि हैं। वेद कभी लिखे नहीं गये, वह कभी रचे नहीं गये, अनन्त काल से वह मौजूद हैं। जिस प्रकार सृष्टि अनादि अनंत है, उसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान भी अनादि अनन्त है। वेद शब्द का अर्थ ही है, ईश्वरीय ज्ञान (विद् धातु का अर्थ है जानना)। वेदान्त नामक ज्ञानराशि ऋषि नामधारी पुरुषों द्वारा आविष्कृत है। ऋषि शब्द का अर्थ है मंत्रद्रष्टा। ऋषियों ने पहले ही से विद्यमान ज्ञान को केवल प्रत्यक्ष भर किया है, यह ज्ञान और भाव उनके निजी चिन्तन का परिणाम नहीं है। जब आप लोग यह सुनें कि वेद के अमुक अंश के अमुक ऋषि हैं, तब यह ख्याल न करें कि उन्होंने उसे लिखा है या अपने मन से उसे उत्पन्न किया है। वह पहले ही से अवस्थित भावों के केवल द्रष्टा मात्र हैं। यह भाव अनन्त काल से मौजूद था, ऋषियों ने केवल आविष्कार भर किया। ऋषि लोग आध्यात्मिक आविष्कर्ता हैं।

ऋषि

वेद नामक ग्रंथ दो भागों में बँटे हैं—कर्मकांड और ज्ञानकांड। कर्मकांड में नाना प्रकार के याग यज्ञों का वर्णन लिखा हुआ है। उनमें का अधिकांश वर्तमान काल के लिये अनुपयोगी जान कर छोड़ दिया गया है। और कुछ अब भी किसी न किसी रूप में वर्तमान है। कर्मकांड के प्रधान प्रधान विषय, जैसे साधारण मनुष्यों के कर्तव्य—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्यासी इन सभी विभिन्न आश्रम वालों के

वेद के दो भाग कर्मकांड ज्ञानकांड

विभिन्न कर्त्तव्य अब तक भी थोड़ी बहुत मात्रा में अनुसरण किये जाते हैं। दूसरा भाग ज्ञानकांड—हम लोगों के धर्म का आध्यात्मिक अंश है। इसका नाम वेदान्त अथवा वेद का अन्तिम भाग, वेद का चरमलक्ष्य है। वेद-ज्ञान के इस सार भाग का नाम वेदान्त अथवा उपनिषद् है। भारत के सभी सम्प्रदाय वाले चाहे वह द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, अद्वैतवादी अथवा शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव जो कोई भी हिन्दू धर्म के अन्दर रहना चाहे उसी को वेद के इस उपनिषद् भाग को मान कर चलना होगा। वे उपनिषदों का अर्थ अपनी अपनी रुचि के अनुसार भले ही करें, परन्तु उन्हें उपनिषदों की प्रामाणिकता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। इसी कारण से मैं हिन्दू शब्द के बदले वेदान्तिक शब्द का व्यवहार करना चाहता हूँ। भारत के सभी प्राचीन दार्शनिक वेदान्त की प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं—और आजकल भारत में हिन्दू धर्म की जो शाखा प्रशाखायें फैली हैं, वे एक दूसरे से भिन्न भले ही जान पड़ें, उनके उद्देश्य कितने ही जटिल क्यों न जान पड़ें, जो अच्छी तरह उनकी आलोचना करेंगे, वे समझ सकेंगे कि उपनिषदों से ही उनके भाव ग्रहण किये गये हैं। इन सब उपनिषदों के भाव हम लोगों की जाति के नस नस में इतना भर गए हैं कि जो हिन्दू धर्म के बिल्कुल शुद्ध शाखा-विशेष के रूप की आलोचना करेंगे, वे समय समय पर देखकर आश्चर्यचकित होंगे कि उपनिषदों में रूपक भाव से वर्णन किये गये तत्त्वों ने उस रूपक के दृष्टान्त-वस्तु में परिणत होकर उन धर्मों का स्थान

ग्रहण कर लिया है। उपनिषदों के बड़े बड़े आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप आजकल स्थूल रूप में परिणत होकर हम लोगों के घरों में पूजा की वस्तु हो गये हैं। इसलिये हम लोगों के जितने प्रकार के पूजा के यंत्र प्रतिमादि हैं, वे सभी वेदान्त से लिये गये हैं, क्योंकि वेदान्त में यह रूपक के तौर पर व्यवहार में लाये गये हैं। क्रमशः वे भाव जाति के मर्म्मस्थल में प्रवेश करके अन्त में प्रतिमा आदि के रूप में दैनिक जीवन के अंग हो गये हैं।

वेदान्त के बाद स्मृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं। ये ऋषियों की रची हुई हैं, किन्तु ये वेदान्त के अधीन हैं। क्योंकि अन्यान्य धर्मावलम्बियों के लिये जिस प्रकार उनके शास्त्र हैं, वैसे ही हम लोगों के लिये स्मृतियाँ हैं। हम लोग इसे स्वीकार करते हैं कि विशेष विशेष ऋषियों ने इन स्मृतियों को बनाया है। इस दृष्टि से अन्यान्य धर्म के शास्त्रों की जैसी प्रामाणिकता है, वैसी ही स्मृतियों की भी प्रामाणिकता है। तोभी स्मृतियाँ ही हम लोगों के लिये बिल्कुल प्रामाणिक नहीं हैं। स्मृति का कोई अंश यदि वेदान्त का विरोधी होता है, तो वह त्याज्य समझा जाता है, उसकी कोई प्रामाणिकता नहीं रहती। ये स्मृतियाँ युग युग में भिन्न भिन्न होती हैं। हम लोग शास्त्रों में पढ़ते हैं—सत्ययुग के लिये ये स्मृतियाँ प्रामाणिक थीं, त्रेता, द्वापर और कलि के लिये दो स्मृतियाँ प्रामाणिक हैं। देश काल पात्र के परिवर्तन के अनुसार आचार आदि भी बदलते

स्मृतियां युग युग में भिन्न भिन्न होती हैं

रहते हैं और स्मृतियाँ मुख्य करके इस आचार की नियामक हैं इसके कारण समय समय पर उनमें भी परिवर्तन करना पड़ा है। मैं आप लोगों को यह बात ज़ोर देकर याद रखने के लिये कह रहा हूँ। वेदान्त में धर्म के मूल तत्वों की जो व्याख्या की गई है, वह अपरिवर्तनीय है। इसका कारण यह है कि मनुष्य और प्रकृति में जो अपरिवर्तनीय तत्व समूह हैं, उन पर प्रतिष्ठित हैं। इनमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। हजारों वर्ष पहले इन तत्वों के सम्बंध में जो धारणा थी, अब भी वे ही हैं, लाखों वर्षों के बाद भी वही धारणा रहेगी। लेकिन जो धार्मिक विधान हम लोगों की सामाजिक अवस्था और सम्बंध के ऊपर निर्भर करते हैं, समाज के परिवर्तन के साथ ही वे भी बदल जाते हैं। किसी खास समय के लिये जो विधि उपयुक्त है, वह दूसरे समय के लिये ठीक नहीं हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी समय में किसी भोजन का विधान है, दूसरे समय के लिये वह निषिद्ध है। वह खाद्य पदार्थ उस समय-विशेष के लिये लाभ-प्रद था, लेकिन ऋतु परिवर्तन तथा अन्यान्य कारणों से दूसरे समय के लिये वह अनुपयोगी सिद्ध हुआ, इसलिये स्मृतिकारों ने उन्हें व्यवहार में लाने से मना किया है। इस कारण से स्वभावतः यह जान पड़ता है कि वर्तमान काल में हमारे समाज में कौन परिवर्तन आवश्यक है, उसे करना पड़ेगा। ऋषि लोग आकर किस प्रकार, उन परिवर्तनों को करना होगा, यह बतला देंगे। हमारे धर्म के मूल सत्य ज़रा भी न बदलेंगे, वह ज्यों के त्यों रहेंगे।

इसके बाद पुराणों का नम्बर आता है। पुराणों के पाँच लक्षण हैं। उनमें इतिहास, सृष्टि तत्त्व, दार्शनिक तत्त्व सभी विषय रूपकों के द्वारा वर्णन किये गये हैं। सर्वसाधारण में वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये पुराण लिखे गये। वेद जिस भाषा में लिखे गये हैं, वह अत्यन्त प्राचीन है। विद्वानों में भी थोड़े ही लोग ऐसे हैं जो इन ग्रंथों का समय निरूपण करने में समर्थ हो सकें। पुराण जिस समय के लोगों की भाषा में लिखे गये, उसे आधुनिक संस्कृत कहते हैं। ये विद्वानों के लिये नहीं हैं, साधारण जनता के लिये है क्योंकि सर्वसाधारण दार्शनिक तत्वों को नहीं समझ सकता। उन्हें इन तत्वों को समझाने के लिये स्थूल भाव से साधु राजा और महापुरुषों के जीवन चरित तथा उन जातियों में जो घटनायें घटित हुई थीं, उनके द्वारा शिक्षा दी गई है। ऋषियों ने जो भी विषय पाया है, उसे ही ग्रहण किया है। परन्तु उनमें से हर एक, धर्म के नित्य सत्य के समझाने के लिये ही व्यवहृत हुआ है।

पुराण

इसके बाद तंत्र हैं। इनके अधिकांश विषय पुराणों के से हैं। और उनमें से बहुत से कर्मकांड के अन्तर्गत प्राचीन यज्ञों को पुनः प्रचलित करने के लिये लिखे गये हैं।

तंत्र

ये ही ग्रन्थ हिन्दुओं के शास्त्र कहलाते हैं। जिस जाति में इतनी अधिक संख्या में धर्मशास्त्र विद्यमान हैं, और जो जाति

असंख्य वर्षों से दर्शन और धर्म के चिन्तन में अपनी शक्ति लगाती आ रही है उस जाति में इतने अधिक सम्प्रदायों का अभ्युदय बिल्कुल स्वाभाविक है। और भी ज्यादा सम्प्रदायों की उत्पत्ति क्यों न हुई यही आश्चर्य की बात है। किन्हीं किन्हीं विषयों में इन सम्प्रदायों में बिल्कुल विभिन्नता है। इन सभी सम्प्रदायों के उन विभिन्नताओं को समझाने के लिये हमारे पास समय नहीं है। इसलिये जिस मत में जिन तत्वों में हिन्दू मात्र का विश्वास रखना आवश्यक है, उन साधारण तत्वों के सम्बन्ध में हम आलोचना करेंगे।

पहले सृष्टि तत्त्व को लीजिये। हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय वालों का ऐसा विश्वास है कि यह सृष्टि, यह प्रकृति, यह माया अनादि अनन्त है। यह संसार किसी विशेष दिन को नहीं रचा गया। एक ईश्वर ने आकर इस जगत की सृष्टि की, इसके बाद वह सो रहे हैं, यह कभी नहीं हो सकता। सृष्टिकारिणी शक्ति अब भी विद्यमान है। ईश्वर अनन्त काल से लेकर सृष्टि करते आ रहे हैं, वह कभी विश्राम नहीं लेते। गीता में श्री कृष्ण भगवान ने कहा है :—

सृष्टितत्व

> यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
>
> × × × × × उपहन्या मिमाः प्रजाः॥ ३। २३, २४

अगर मैं क्षण भर भी कर्म न करूँ तो सृष्टि का लय हो जाय। संसार में जो सृष्टि-शक्ति दिन रात कार्य कर रही है, वह

अगर क्षण भर के लिये भी बन्द हो जाय तो यह संसार ध्वंस हो जायगा। ऐसा कोई समय ही नहीं था जिस समय सम्पूर्ण जगत में यह शक्ति क्रियाशील न थी, तो भी युग विशेष में प्रलय होता है। हम लोगों का सृष्टि शब्द अंगरेज़ी का Creation नहीं है। Creation कहने से अंगरेजी में कुछ नहीं से कुछ का होना, असत् से सत् का उद्भव, यह अपरियात मतवाद समझा जाता है। मैं इस प्रकार की असंगत बात में विश्वास करने के कारण आप लोगों की बुद्धि और विचारशक्ति का अपमान करना नहीं चाहता। सभी प्रकृति ही विद्यमान रहती है; केवल प्रलय के समय वह क्रमशः सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाती है, अन्त में एक बारगी अव्यक्त भाव धारण कर लेती है। फिर कुछ काल मानो विश्राम लेने पर कोई उसे बाहर करता है, उस समय फिर पहले ही की तरह समवाय, पहले ही की तरह क्रम विकास, पहले ही की तरह प्रकाश होने लगता है। कुछ समय तक यह खेल जारी रहता है, फिर वह खेल बन्द हो जाता है—क्रमशः सूक्ष्मात् सूक्ष्म होने लगता है, अन्त में सम्पूर्ण। फिर लीन हो जाता है। फिर बाहर आता है। अनन्त काल से लेकर इस प्रकार लहरों की तरह एक बार सामने, फिर पीछे की ओर जाता है। देश-काल और अन्यान्य दूसरी वस्तुयें इसी प्रकृति के अन्तर्गत हैं। इसी कारण से ही सृष्टि होती है, ऐसा कहना पागलपन है। सृष्टि के आरंभ और अन्त होने के सम्बंध में कोई प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। इसी कारण हम लोगों के शास्त्रों में सृष्टि के आदि

वा अन्त का उल्लेख किया गया है, उस समय किसी युग विशेष का आदि अन्त होना समझना चाहिये, उसका कोई दूसरा अर्थ नहीं।

तब प्रश्न उठता है कौन इस सृष्टि की रचना करता है? इसके उत्तर में सभी कहेंगे, ईश्वर। अंग्रेजी में साधारणतः God शब्द से जो समझा जाता है, हमारा अभिप्राय उससे नहीं है। संस्कृत का ब्रह्म शब्द का व्यवहार करना ही हमारी दृष्टि में सब से ठीक होगा। वही इस जगत-प्रपंच का साधारण कारण स्वरूप है। ब्रह्म का स्वरूप क्या है? ब्रह्म नित्य, शुद्ध, नित्य जाग्रत, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ दयामय, सर्वव्यापी, निराकार अखंड है। उन्होंने ही इस जगत की सृष्टि की है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यह ब्रह्म ही जगत् का स्रष्टा और विधाता है। तो दो आपत्ति उठती हैं। इस जगत में काफी विषमता देखने में आती है, कोई धनी है, कोई गरीब है, ऐसी विषमता क्यों है? इसके साथ ही यहाँ पर निष्ठुरता भी वर्तमान है। क्योंकि यहाँ पर एक का जीवन दूसरे की मृत्यु के ऊपर निर्भर करता है। एक जीव दूसरे जीव को खंड खंड करके छोड़ देता है, प्रत्येक मनुष्य अपने भाई का गला दबाना चाहता है। यह प्रतियोगता, यह निष्ठुरता, यह उत्पात, दिनरात की उठती हुई सर्द आह—यही संसार की दशा है—अगर यही ईश्वर की सृष्टि है, तो यह ईश्वर अत्यन्त निर्दयी है। मनुष्य कितने ही निष्ठुर राक्षस की कल्पना क्यों न करे, यह ईश्वर उससे भी

निष्ठुर हैं। वेदान्त कहता है ईश्वर इस विषमता और प्रतियोगिता का कारण नहीं है। तो किसने इसे किया ? हम लोगों ने ही इसे किया है। बादल सभी खेतों में समान रूप से जल देते हैं, लेकिन अन्न उसी खेत में अच्छा उपजता है जो अच्छी तरह जोता रहता है, जो खेत अच्छी तरह जोता नहीं रहता है, उसे जलवृष्टि से लाभ नहीं होता। यह उस बादल का अपराध नहीं है। वह ईश्वर अत्यन्त दयावान है, हमीं लोग यह विषमता फैलाते हैं। किस प्रकार हम लोगों ने इस विषमता को फैलाया है ? इस संसार में कोई सुखी पैदा होता है, कोई दुखी। उन्होंने इस विषमता को नहीं उत्पन्न किया तो किसने किया है! उनके पूर्वजन्म के कर्म द्वारा ही यह भेद—यह विषमता होगई है।

ईश्वर का वैषम्य और नैर्घृण्यदोष

यहाँ हम लोग इस दूसरे तत्व की आलोचना पर आते हैं—जिस पर केवल हमी लोग नहीं, बौद्ध, जैन लोग भी एकमत हैं। हम सभी लोग स्वीकार करते हैं कि सृष्टि की तरह जीवन भी अनन्त है। शून्य से जीव की उत्पत्ति हुई है, सो बात नहीं,—ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। इस प्रकार के जीव का कोई अर्थ नहीं। जिसका आज आरम्भ है, कल उसका अन्त होगा, अन्त में उसका बिल्कुल नाश हो जायगा। यह जीवन पूर्वकाल में भी विद्यमान था। आजकल का सारा विज्ञान इस विषय में हम लोगों की सहायता करता है—हम लोगों के शास्त्रों में छिपे तत्व जड़ जगत् के व्यापारों

कर्म फल

की सहायता से व्याख्या करते हैं। आप सब लोग पहले ही से जानते होंगे कि हम लोगों में से प्रत्येक अनन्त काल के कर्म समष्टि का फल स्वरूप है। कवियों द्वारा वर्णन किया हुआ शिशु प्रकृति से साक्षात् पैदा नहीं होता, उसके कंधे पर अनन्त अतीत काल की कर्म-समष्टि है। चाहे अच्छे हों या बुरे, वह अपने अतीत कर्मों का फल भोगता आरहा है। हम जानते हैं, इसी कारण से जन्म होता है। इसी से वैषम्य (असमानता) की उत्पत्ति है। यही कर्मविधान है। हम लोगों में से प्रत्येक अपने अपने भाग्य का विधाता है। इस मतवाद से अदृष्टवाद खंडित होता है। और यही ईश्वर के वैषम्य और नैघृण्य दोष का निराकरण करता है। हम लोग जो कुछ भी भोगते हैं, उस के लिए हम लोग उत्तरदायी हैं, दूसरा कोई नहीं। हमीं आर्य-स्वरूप हैं, हमी कारण हैं। इसलिये हम लोग स्वाधीन हैं। अगर हम लोग दुखी हैं तो समझना चाहिये कि हमीने अपने को दुखी बनाया है इससे यह भी समझ में आता है कि अगर हम लोग प्रयत्न करें तो सुखी भी हो सकते हैं। अगर हम अपवित्र हैं तो अपने ही दोष से। इससे यह जान पड़ता है कि अगर हम इच्छा करें तो पवित्र भी हो सकते हैं। इसी प्रकार सभी विषयों में समझना चाहिये। मनुष्य की इच्छा किसी घटना के अधीन नहीं है। मनुष्य की अनन्त प्रबल इच्छा शक्ति और स्वाधीनता के सम्मुख सभी शक्तियाँ, यहाँ तक कि प्राकृतिक शक्तियाँ भी, सिर झुकाती हैं। उनकी दास हो सकती हैं।

यहां स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आत्मा क्या है? आत्मा को जाने बिना हमारे शास्त्रों में कहे हुए ईश्वर को भी नहीं जाना जा सकता। भारत और भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में वाह्य प्रकृति की आलोचना द्वारा इस सर्वकालीन सत्ता के आभास की चेष्टा की गई है। मैं जानता हूँ, इसका परिणाम भी अत्यन्त शोचनीय हुआ है। अतीत सत्ता का आभास होना तो दूर रहा, हम लोग जितने ही जड़ जगत की आलोचना करते हैं, उतने ही जड़वादी होते जाते हैं। अगर हम लोगों में थोड़ा बहुत पहले धर्म भाव रहता भी है, तो वह भी जड़ जगत की आलोचना करते करते दूर होजाता है। इसलिये आध्यात्मिकता और उस परम पुरुष का ज्ञान 'वाह्य जगत द्वारा नहीं हो सकता। उसकी खोजबीन हृदय में, आत्मा में करनी होगी। वाह्य जगत् हम लोगों को उस अनन्त के सम्बंध में कोई सन्देश नहीं दे सकता। अन्तर्जगत में अन्वेषण करने से ही उसका सम्वाद पाया जा सकता है। इसलिये केवल आत्म तत्व के अन्वेषण से ही, आत्म तत्व के विश्लेषण से ही, परमात्मा का ज्ञान संभव हो सकता है। जीवात्मा के स्वरूप के सम्बंध में भारत के भिन्न भिन्न सम्प्रदायवालों में मतभेद भले ही है, किन्तु कई एक विषयों में सभी एकमत भी हैं। जैसे-जीवात्मा अनादि, अनन्त है, वह स्वरूपतः अविनाशी है। दूसरा यह कि प्रत्येक आत्मा में सब प्रकार की शक्ति, आननंद, पवित्रता सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता

आत्म तत्व

छिपी हुई है। इस महान् तत्व को सदा स्मरण रखना होगा। प्रत्येक मनुष्य में, प्रत्येक प्राणी में—वह कितना ही दुर्बल या मूर्ख क्यों न हो, वह छोटा हो या बड़ा, वह सर्वव्यापी सर्वज्ञ आत्मा मौजूद है। आत्मा की दृष्टि से कोई भेद नहीं है, भेद केवल प्रकाश के तारतम्य में है; स्वरूपतः उसके साथ हम लोगों का कोई भेद नहीं है। जो हम लोगों का भाई है उसकी जो आत्मा है, वही हम लोगों की भी है। भारत ने इस महान् तत्व का संसार के सामने प्रचार किया है। अन्यान्य देशों में सम्पूर्ण मनुष्यों में भ्रातृ भाव का तत्व प्रचारित है, भारत में वह 'सर्वप्राणी का भ्रांतृ भाव' का आकार धारण किए है। छोटा से छोटा प्राणी, यहाँ तक कि चींटी तक भी हम लोगों का भाई है, वह हमारा देह स्वरूप है। 'एवं तु पंडितैर्ज्ञात्वा सर्वभूत मयं हरिम्' इत्यादि। इस रूप में विद्वान लोग उस प्रभु को सर्वभूत मय जानकर, सब प्राणियों में जानकर, सर्व प्राणिमात्र की उपासना करेंगे। इसी कारण से हिन्दुस्तान में पशु पक्षियों और दरिद्रों के प्रति इतना दया का भाव पाया जाता है, सभी बातों में यह दया भाव दिखलाई पड़ता है। आत्मा में सारी शक्तियाँ विद्यमान हैं, इस पर भारत के सभी सम्प्रदाय वाले एकमत हैं।

स्वभावतः अब ईश्वर तत्व की आलोचना का प्रश्न खड़ा होता है। किन्तु इसके पहले आत्मा के सम्बंध में एक बात कहना चाहता हूँ। जो अंग्रेजी भाषा की चर्चा करते हैं, वे अक्सर Soul और mind इन दो शब्दों के झमेले में पड़ जाते हैं

संस्कृत का आत्मा और अंग्रेज़ी का mind शब्द बिल्कुल भिन्न भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं। हम लोग जिसे

आत्मा क्या है ? मन कहते हैं, पाश्चात्य देश वाले इसे Soul कहते हैं। पाश्चात्य देशों में आत्मा के सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान किसी समय नहीं था। प्रायः बीस वर्ष हुए, संस्कृत दर्शन शास्त्रों की सहायता से यह ज्ञान पाश्चात्य देशों में आया है। हम लोगों का यह स्थूल शरीर है, इसके पीछे मन है। लेकिन मन आत्मा नहीं है। वह सूक्ष्म शरीर-सूक्ष्म तन्मात्र से बना है। वही जन्म जन्मान्तर में विभिन्न शरीर में आश्रय लेता है, किन्तु इसके पीछे Soul या मनुष्य की आत्मा है। यह आत्मा शब्द Soul या mind शब्द के द्वारा अनुवादित नहीं हो सकता। इसलिये हम लोगों को संस्कृत का आत्मा शब्द अथवा आजकल के पाश्चात्य दार्शनिकों के मतानुसार Self शब्द का व्यवहार करना होगा। चाहे हम जिस शब्द का व्यवहार करें, आत्मा-मन और स्थूल शरीर दोनों से पृथक है, इस धारणा को मन के भीतर अच्छी तरह से रखना होगा। और यह आत्मा ही मन या सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर एक देह से दूसरी देह में जाता है। जिस समय वह सर्वज्ञत्व और पूर्णत्व प्राप्त करता है, उस समय उसका जन्म मृत्यु नहीं होता। उस समय वह स्वाधीन हो जाता है। अगर वह चाहे तो मन या सूक्ष्म शरीर को साथ रख सकता है अथवा उसे त्याग करके अनन्त काल के लिये स्वाधीन और मुक्त हो सकता है। स्वाधी-

नता ही आत्मा का लक्ष्य है। यही हम लोगों के धर्म की विशेषता है हम लोगों के धर्म में भी स्वर्ग नर्क है, किन्तु वह चिरस्थायी नहीं। स्वर्ग नरक के स्वरूप का विचार करने से यह सहज ही ज्ञान पड़ता है कि वह चिरस्थायी नहीं हो सकते। यदि स्वर्ग नाम की कोई वस्तु है, तो वह इस मर्त्यलोक की पुनरावृत्ति मात्र होगी, थोड़ा सा विशेष सुख या थोड़ा सा अधिक भोग होगा। इससे और भी बुराई ही होगी। इस प्रकार के स्वर्ग अनेक हैं। जो लोग फल की आकांक्षा के साथ इस लोक में कोई सत्कर्म करते हैं, वह मृत्यु के बाद इस प्रकार के स्वर्ग में इन्द्रादि देवता होकर जन्म ग्रहण करते हैं। यह देवत्व विशेष पद मात्र है। यह

स्वर्ग

देवता भी एक समय मनुष्य थे, सत्कर्मों से उन लोगों ने देवत्व प्राप्त किया है। इन्द्र, वरुण नाम के कोई देव विशेष नहीं हैं। हज़ारों इन्द्र होंगे। राजा नहुष ने मृत्यु के बाद इन्द्रत्व प्राप्त किया था। इन्द्रत्व पद मात्र है। किसी व्यक्ति ने सत्कर्मों के फल से उन्नत होकर इन्द्रत्व प्राप्त किया, कुछ दिन तक उस पद पर रहा, फिर उसने देवदेह को त्याग कर फिर मनुष्य जन्म ग्रहण किया। मनुष्य जन्म सर्व श्रेष्ठ जन्म है। कोई कोई देवता स्वर्ग सुख की वासना त्याग कर मुक्ति लाभ की चेष्टा करते हैं, किन्तु जिस प्रकार इस जगत के अधिकांश लोग धन मान ऐश्वर्य पाकर उच्चता को भूल जाते हैं। उसी प्रकार अधिकांश देवता भी ऐश्वर्य के मद में मत्त होकर मुक्ति की चेष्टा नहीं करते। जब वह अपने शुभ कर्मों के फल भोग लेते हैं

तो वह फिर पृथ्वी पर मनुष्य का रूप धारण करते हैं। इसलिये यह पृथ्वी ही कर्म भूमि है, इस पृथ्वी से ही हम लोग मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इन स्वर्गों से हमें विशेष प्रयोजन नहीं, तो किस वस्तु की प्राप्ति के लिये हम लोगों को चेष्टा करनी चाहिये ? मुक्ति के लिये। हमारे शास्त्र कहते हैं कि

मुक्ति ही हम लोगों का लक्ष्य है

श्रेष्ठ से श्रेष्ट स्वर्ग में भी तुम प्रकृति के दास मात्र हो। तुम बीस हज़ार वर्ष तक राज भोग करो, इस से क्या लाभ होगा ? जितने दिन तक तुम्हारा शरीर रहेगा, उतने दिन तक तुम सुखों के दास मात्र होंगे। जितने दिन तक देश काल तुम्हारे ऊपर कार्य कर रहा है, उतने दिन तक तुम क्रीत दास हो। इसी कारण से हम लोगों को बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति दोनों को जीतना पड़ेगा। प्रकृति जिस प्रकार तुम्हारे पैरों तले रहे, उसे पददलित करके उसके बाहर जाकर स्वाधीनतापूर्वक अपनी महिमा को प्रतिष्ठित करना होगा। उस समय जन्म और मरण के पार हो जाओगे। उस समय तुम्हारा सुख चला जायगा, इसलिये तुम उस समय दुःख को भी पार कर जाओगे। उस समय तुम सर्वातीत, अव्यक्त, अविनाशी आनंद के अधिकारी होगे। हम लोग जिसे यहाँ पर सुख और कल्याण कहते हैं वह उस अनन्त आनंद का एक कण मात्र है। यह अनंत आनंद ही हम लोगों का लक्ष्य है।

आत्मा जिस प्रकार अनंत आनन्द स्वरूप है, वैसे ही लिंग वर्जित है। आत्मा में स्त्री और पुरुष का भेद नहीं है। देह के

सम्बन्ध में ही नर नारी का भेद है। इसलिये आत्मा पर स्त्री पुरुष का भेद आरोपण करना भ्रम मात्र है—

आत्मा लिंग और वय से रहित है

शरीर के सम्बन्ध में भी वह सत्य है। आत्मा के सम्बंध में अवस्था का भी कोई निश्चय नहीं हो सकता वह प्राचीन पुरुष सदा ही एक रूप रहता है।

किस प्रकार यह आत्मा बद्ध हुआ? हमारे शास्त्र ही इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर दे सकते हैं। अज्ञान ही बंधन का कारण है। हम लोग अज्ञान में ही फँसे हुए हैं—ज्ञान के उदय से ही उसका नाश होगा, हम लोगों को अज्ञानांधकार के पार ले जायगा इस ज्ञान की प्राप्ति का उपाय क्या है? भक्तिपूर्वक ईश्वर की उपासना और संसार के सब प्राणियों

बंधन और मुक्ति

को ईश्वर का रूप मानना, उन पर प्रेम करना ही उस ज्ञान की प्राप्ति का उपाय है। ईश्वर में अत्यन्त प्रेम रखने से ज्ञान पैदा होता है, अज्ञान दूर होता है, सारे बंधन टूट जाते हैं और आत्मा मुक्ति प्राप्त करती है।

हम लोगों के शास्त्रों में ईश्वर के दो रूपों का उल्लेख किया गया है, सगुण और निर्गुण। सगुण ईश्वर सर्व व्यापी, संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का

सगुण और निर्गुण ब्रह्म

कर्ता है—संसार का अनादि जनक जननी है। उसके साथ हम लोगों का नित्य भेद है। मुक्ति का अर्थ है ईश्वर का सामीप्य और सालोक्य प्राप्ति। निर्गुण ब्रह्म के वर्णन में उनके लिये संसार में व्यवहार में लाये

जाने वाले सब तरह के विशेषण अनावश्यक और अयुक्तिप्रद जानकर छोड़ देने पड़ेंगे। उस निर्गुण सर्वव्यापी पुरुष को ज्ञानवान नहीं कहा जा सकता, इसका कारण यह है कि ज्ञान मन का धर्म है। उसे चिन्ताशील भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि चिन्ता ससीम जीव के ज्ञान-लाभ का उपाय मात्र है। उसे विचार-परायण भी नहीं कह सकते। क्योंकि विचार और ससीमता-दुर्बलता का चिन्ह स्वरूप है। उसे सृष्टिकर्ता भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वद्ध को छोड़कर मुक्त पुरुष सृष्टि में प्रवृत्त नहीं होता। उसके लिये बंधन ही क्या है? बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करता। उसे प्रयोजन ही किस वस्तु का है? अभाव के बिना कोई कार्य नहीं करता। उसे अभाव ही किस वस्तु का है? वेद में उसके लिये 'स:' (वह) शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'स:' शब्द के द्वारा निर्दिष्ट न होकर निर्गुण भाव को समझाने के लिये तत् शब्द के द्वारा उसका निर्देश किया गया है। स: शब्द के द्वारा निर्दिष्ट होने पर व्यक्ति विशेष का बोध होता है, इससे जीव जगत के साथ उसकी बिल्कुल पृथकता सूचित करता है। ईश्वर के लिये निर्गुणवाचक तत् शब्द का प्रयोग किया गया है, तत् शब्द निर्गुण ब्रह्म के लिये प्रचलित हुआ है। इसी को अद्वैतवाद कहते हैं।

इस निर्गुण पुरुष के साथ हम लोगों का क्या सम्बन्ध है? हम लोग उससे बिल्कुल अभिन्न हैं। हम लोगों में से प्रत्येक सम्पूर्ण प्राणियों का मूल कारण स्वरूप-निर्गुण पुरुष का

विभिन्न विकास मात्र है।.जिस समय हम लोग उस अनन्त
निगु[ँ]ण पुरुष से अपने को पृथक समझते हैं, उसी समय हम
लोगों के दुःख की उत्पत्ति होती है और उस अनिर्वचनीय निर्गुण
सत्ता के साथ हम लोगों का अभिन्न ज्ञान ही मुक्ति है। सारांश
यह कि हम लोग अपने शास्त्रों में ईश्वर के दो भाव का उल्लेख
पाते हैं। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि निर्गुण ब्रह्मवाद
ही सब तरह के नीति विज्ञान की भित्ति है।
अद्वैतवाद ही नीति अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रत्येक जाति
विज्ञान की भित्ति है के भीतर यह सत्य प्रचलित है—मनुष्य
जाति को अपने समान समझना चाहिये।
भारतवर्ष में तो मनुष्य और इतर प्राणियों में कोई भेद ही नहीं।
काल से ही प्रत्येक जाति के भीतर यह सत्य प्रचलित है - मनुष्य
जाति को अपने समान समझना चाहिये। भारतवर्ष में तो मनुष्य
और इतर प्राणियों में कोई भेद ही नहीं किया जाता, सभी प्राणियों
को आत्म तुल्य समझने का उपदेश दिया गया है। लेकिन दूसरे
प्राणियों को आत्मतुल्य समझने से क्यों कल्याण होगा, किसी ने
उसका कारण नहीं बतलाया है। एक मात्र निर्गुण ब्रह्मवाद ही
इसको बतला सकता है। आप इस तत्व को तभी समझेंगे
जब आप सारे ब्रह्माण्ड को एक अखंड स्वरूप समझेंगे—जिस
समय आप जानेंगे कि दूसरे को प्रेम करने से अपने
को ही प्रेम करना होगा, दूसरे की हानि करने से अपनी ही
हानि होगी। उसी समय हम लोगों की समझ में आ जायगा

कि दूसरों का अनिष्ट करना क्यों उचित नहीं। इसलिये इस निर्गुण ब्रह्मवाद ही से नीति विज्ञान के मूल तत्व की युक्ति पाई जाती है। अद्वैतवाद की चर्चा उठने से और भी कई बातें आ पड़ती हैं। सगुण ईश्वर में विश्वास करने से हृदय में कैसा अनुपम प्रेम उमड़ता है, इसे मैं जानता हूँ। विभिन्न समय के प्रयोजन के अनुसार लोगों पर भक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है इस से मैं अच्छी तरह अवगत हूँ। लेकिन हम लोगों के देश में अब ज्यादा रोने धोने का समय नहीं है। इस समय कुछ बल पौरुष की आवश्यकता है।

बल-वीर्य के लिए उपाय— अद्वैतवाद है

इस निर्गुण ब्रह्म में विश्वास होने पर—सब तरह के कुसंस्कारों से रहित होकर 'मैं ही निर्गुण ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान की सहायता से खुद अपने पैरों पर खड़ा होने से हृदय में कैसी अपूर्व शक्ति का विकास होता है, कहा नहीं जा सकता। भय ? किसका भय ? मैं प्रकृति के नियमों तक को ग्राह्य नहीं करता ? मृत्यु मेरे लिये तो उपहास की वस्तु है। मनुष्य उस समय अपनी आत्मा की महानता को जानता है—जो आत्मा अनादि अनन्त है और अविनाशी है, जिसे कोई यंत्र काट नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, जल डुबा नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती, जो अनन्त जन्म रहित मृत्यु शून्य है, जिस की महिमा के सामने सूर्य चन्द्र आदि—यहाँ तक कि सारा ब्रह्माण्ड समुद्र की बूँद के समान जान पड़ता है, जिसकी महिमा के सामने काल का

अस्तित्व विलीन हो जाता है। हम लोगों को इस महिमाशाली आत्मा के प्रति विश्वास जमाना होगा—तभी बलवीर्य आवेगा। तुम जो चिन्तन करोगे, वही होगे। अगर तुम अपने को दुर्बल समझोगे, तुम दुर्बल होगे, तेजस्वी समझने पर तेजस्वी होगे। अगर तुम अपने को अपवित्र समझोगे, तुम अपवित्र होगे। अपने को शुद्ध समझने पर शुद्ध होगे। अद्वैतवाद हम लोगों को अपने को दुर्बल समझने का उपदेश नहीं देता, किन्तु अपने को तेजस्वी सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ समझने का उपदेश देता है। हमारे भीतर यह भाव अब भी चाहे प्रकाशित न हो, लेकिन यह तो हमारे भीतर ही है। हमारे भीतर सभी ज्ञान, सभी शक्ति, पूर्ण पवित्रता और पवित्रता का भाव है। तब हम उन्हें जीवन में क्यों नहीं प्रकाशित कर पाते? इसका कारण है, हम लोग उन पर विश्वास नहीं करते। अगर हम लोग उनपर विश्वास करें तो उनका विकास होगा, जरूर होगा। अद्वैतवाद इसी की शिक्षा देता है। बिल्कुल लड़कपन से ही आपके बच्चे तेजस्वी होने चाहिये उन्हें किसी तरह की दुर्बलता, किसी प्रकार के बाहरी अनुष्ठान की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं। वे तेजस्वी बनें, अपने पैरों खुद खड़े हों, वे साहसी, सर्वजयी, सब कुछ सहने वाले बनें। इन सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने के लिये उन्हें पहले आत्मा की महिमा के सम्बन्ध में शिक्षा देनी होगी। यह शिक्षा वेदान्त ही में, केवल वेदान्त ही में पाओगे। उसमें अन्यान्य धर्मों की तरह भक्ति उपासना आदि के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिये गये हैं—वह काफी मात्रा में मौजूद हैं,

लेकिन मैं जिस आत्मतत्व की बात कह रहा हूँ वही जीवन और शक्ति देने वाला है, वह अपूर्व है। वेदान्त ही में केवल वह महान तत्व छिपा हुआ है। जो सम्पूर्ण जगत् के भावों में उलट फेर पैदा कर देगा और विज्ञान के साथ धर्म का सामंजस्य स्थापित करेगा।

मैंने आप लोगों से अपने धर्म के प्रधान प्रधान तत्वों को बताया है। इन्हें किस प्रकार कार्य रूप में परिणत करना होगा, इस समय उस सम्बन्ध में कई बातें कहनी हैं। मैंने पहले ही कहा है कि भारत में जितने कारण मौजूद हैं, उनसे यहाँ पर अनेक सम्प्रदायों का होना सम्भव है। इसी से यहाँ पर अनेक सम्प्रदाय दिखलाई पड़ते हैं। एक और आश्चर्य की बात यह देखने में आती है कि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय का विरोध नहीं करता। शैव यह नहीं कहते की वैष्णव मात्र ही अधःपतित होंगे, नर्कगामी होंगे। अथवा वैष्णव शैवों को यह बात नहीं कहते। शैव कहते हैं कि हम अपने मार्ग पर चलते हैं, तुम भी अपने रास्ते पर चलो। अन्त में हम लोग एक ही स्थान पर पहुँचेंगे। भारत के सभी सम्प्रदायवालों ने इसे स्वीकार किया है। इसी को इष्ट-निष्ठा कहते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यह बात

इष्ट निष्ठा

चली आती है कि ईश्वरोपासना की अनेक प्रणालियां हैं। यह भी चला आता है कि विभिन्न प्रकृति के लिये विभिन्न साधन प्रणाली आवश्यक है। तुम जिस प्रणाली से ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हो, सभंव है वह प्रणाली हमारे लिये सुगम न हो, सभंव है वह प्रणाली हमारे लिये हानिप्रद

भी हो। सभी को एक मार्ग से चलना होगा, इसका कोई अर्थ नहीं, इससे उल्टे हानि ही होगी, इसलिये सब लोगों को एक मार्ग से होकर ले जाने की चेष्टा को एकदम त्याग कर देना चाहिये। अगर कभी पृथ्वी के सब लोग एक धर्म के मानने वाले होकर एक रास्ते पर चलने लगेंगे, वही बहुत बुरा होगा। ऐसा होने पर लोगों की स्वतंत्र विचारशक्ति और प्रकृति धर्मभाव एकदम नष्ट हो जायगा। भेद ही हम लोगों को जीवनयात्रा का मूल मंत्र है। सम्पूर्ण रूप से भेद नष्ट हो जाने पर सृष्टि का लोप हो जायगा। जितने दिन तक विचार प्रणाली की यह भिन्नता रहेगी, तब तक हम लोग मौजूद रहेंगे। आपके लिये आपका मार्ग अच्छा हो सकता है, लेकिन हमारे लिये नहीं। प्रत्येक के इष्ट भिन्न हैं, इस बात से यह समझ में आता है कि प्रत्येक का मार्ग भिन्न है। यह बात ध्यान में रखो कि संसार के किसी भी धर्म के साथ हम लोगों का विवाद नहीं। हममें से प्रत्येक के लिये भिन्न भिन्न इष्ट देवता हैं। लेकिन जब हम देखते हैं कि लोग आकर हम लोगों से कहते हैं कि यही एक मात्र मार्ग है, और भारत सरीखे असाम्प्रदायिक देश में जोर देकर हम लोगों को उस मत में करना चाहते हैं। तो हमें उनकी बातें सुनकर हंसी ही आती हैं! जो ईश्वर को पाने के उद्देश्य से दूसरे मत के मानने वाले अपने भाइयों का गला घोटना चाहते हैं, उनके मुख से प्रेम की बातें बहुत असंगत और बुरी जान पड़ती हैं। उनके प्रेम का कोई विशेष मूल्य नहीं है। दूसरे लोग दूसरे मार्ग का अनुसरण करते हैं, जो यह सहन नहीं

नहीं कर सकता है, वह प्रेम का उपदेश देता है ? यदि यह प्रेम है, तो द्वेष किसे कहेंगे ? ईसा, बुद्ध या मुहम्मद—संसार के जिस किसी भी अवतार की उपासना क्यों न करो, किसी धर्मावलम्बी के साथ हमारा विवाद नहीं। हिन्दू कहते हैं, आओ भाई, तुम्हें जिस सहायता की आवश्यकता हो, मैं करने के लिये तैयार हूँ। लेकिन मैं अपने रास्ते से जाऊँगा, उसमें कुछ बाधा न पहुँचाना। मैं अपने इष्टदेव की उपासना करूँगा। तुम्हारा रास्ता बिल्कुल ठीक है, इसमें ज़रा भी झूठ नहीं है, लेकिन मेरे लिये वह दुखदाई होगा। कौन खाद्य पदार्थ हमारे शरीर के लिये उपयोगी है, इसे हम अपने अनुभव से स्वयं जान जाते हैं, हजारों डाक्टर इस सम्बन्ध में हमें कुछ सिखा नहीं सकते। इसलिये किस रास्ते से चलना चाहिये इसे हमारी अभिज्ञता ही हमें अच्छी तरह बतला देगी, यही इष्ट निष्ठा है। इसी कारण से हम कहते हैं कि यदि किसी मन्दिर में जाकर अथवा किसी मंत्र या प्रतिमा की सहायता से तुम अपनी आत्मा में विद्यमान ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो। यदि किसी विशेष अनुष्ठान द्वारा तुम्हारा ईश्वर तुम्हें मिल सकता हो तो तुम उस अनुष्ठान को कर सकते हो। जो कोई भी क्रिया या अनुष्ठान तुम्हें ईश्वर के निकट ले जाय, तुम उसी को करो। जिस किसी मन्दिर में जाने से तुम्हें ईश्वर मिले, उस मन्दिर में जाकर उपासना करो। लेकिन विभिन्न मतों को लेकर विवाद न करो। जिस क्षण तुम विवाद करोगे, उसी क्षण तुम ईश्वरीय मार्ग से भ्रष्ट हो जाओगे, तुम आगे

न बढ़कर पीछे को हटने लगोगे, क्रमशः पशु पदवी को पहुंच जाओगे।

हम लोगों का धर्म किसी से घृणा करना नहीं सिखाता, सभी को अपनी गोद में लेना सिखाता है। हम लोगों का जाति भेद तथा दूसरे रस्मोरिवाज धर्म से सम्बंध रखते हैं, ऐसा ऊपरी तौर पर जान पड़ता है, परन्तु वास्तव में ऐसी

समाज संस्कार

बात नहीं। सारी हिन्दू जाति की रक्षा करने के लिये ये सभी नियम आवश्यक थे। जिस समय इस आत्म-रक्षा की आवश्यकता न रहेगी, उस समय ये आप से आप उठ जाँयगे। इस समय ज्यों ज्यों हमारी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों ये प्राचीन प्रथायें हमें अच्छी जान पड़ती हैं। एक समय था जबकि हम इनमें से अधिकांश को अनावश्यक और फजूल समझते थे लेकिन ज्यों ज्यों हमारी अवस्था बड़ी होती जाती है, त्यों त्यों इन के विरुद्ध कुछ बोलने में संकोच जान पड़ता है। बात यह है कि सैकड़ों शताब्दियों के ज्ञान और अनुभव के बाद ये प्रथायें बनी हैं। कल का बच्चा जो सम्भव है कल ही मृत्यु के मुख में चला जाय, अगर वह आकर हमारे बहुत दिनों के सोचे विचारे विषय को छोड़ देने के लिये कहे और हम भी यदि उस बच्चे की बात सुनकर उसके मतानुसार अपनी कार्य-प्रणाली को परिवर्तन कर डालें, तो हमसे बढ़कर और कौन अहमक होगा। भारत के अतिरिक्त और दूसरे देशों से हम लोग समाज-सुधार के सम्बंध में जो उपदेश पाते हैं, वे अधिकांश में

इसी प्रकार के हैं। उनसे यह कहना होगा—पहले तुम एक स्थायी समाज संगठित करो, तब तुम्हारी बात सुनी जायगी। तुम लोग दो दिन भी एक बात पर ठहरते नहीं हो, इस पर वाद विवाद उठते ही छोड़ देते हो। क्षुद्र पतिंगे की तरह तुम लोगों का क्या स्थायी जीवन है! बुद्बुद् की तरह तुम्हारी उत्पत्ति होती है, और बुद्बुद् को तरह ही तुम्हारा लय होता है। पहले हम लोगों की तरह स्थायी समाज गठित करो-पहले ऐसे ऐसे सामाजिक नियमों और प्रथाओं का प्रवर्तन करो जिन की शक्ति सैकड़ों शताब्दियों तक स्थिर रहे तब तुम से बातचीत करने का अवसर आयेगा। लेकिन जब तक ऐसा न होगा, तब तक तुम चंचल बच्चे की तरह हो।

हमारे धर्म के सम्बंध में हमें जो कुछ कहना था, वह समाप्त हो गया। अब वर्तमान युग के लिये जो विशेष प्रयोजन है, ऐसा एक विषय तुम से कहेंगे। महाभारत के रचयिता वेद व्यास का भला हो। वह कह गये हैं,'कलियुग में दान कलियुग में धर्मदान ही एक मात्र धर्म है।' और युगों में जो ही श्रेष्ठ साधन है कठोर तपस्या और योगादि प्रचलित थे, वे इस समय में न चल सकेंगे। इस युग में विशेष महत्त्व दान का है। दान शब्द से क्या अभिप्राय समझते हो? धर्मदान ही श्रेष्ठ दान है, इसके बाद विद्यादान, इसके बाद प्राण दान, अन्न वस्त्रदान सब से निकृष्ट दान है। जो धर्म ज्ञान प्रदान करते हैं, वह आत्मा की अनन्त जन्म मृत्यु के प्रवाह से

रक्षा करते हैं। जो विद्यादान करते हैं वे भी आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति में सहायता करते हैं। अन्यान्य दान, यहाँ तक कि प्राणदान भी इसकी तुलना में हेय है। इसलिये तुम लोगों को इतना जानना आवश्यक है कि आध्यात्मिक ज्ञान के दान से और सब कर्म निकृष्ट हैं। आध्यात्मिक ज्ञान को फैलाने ही से मनुष्य जाति की सब से बड़ी सेवा हो सकती है। हमारे शास्त्र आध्यात्मिक भावों के अनन्त सोते हैं। और इस त्याग-भूमि भारत को छोड़कर पृथ्वी में और कहाँ धर्म की अपरोक्षानुभूति का ऐसा दृष्टान्त पाओगे? संसार के सम्बंध में हमें कुछ ज्ञान है और देशों में बड़ी लम्बी चौड़ी बातें सुनने में तो आती हैं, लेकिन केवल इसी देश में ऐसे लोग पाये जाते हैं जो धर्म को जीवन में परिणत करने वाले होते हैं। केवल मुँह से धर्म की बातें करना ही धर्म नहीं है। तोता भी मुँह से राम राम कहता है। ऐसा जीवन देखना चाहिये जिसमें त्याग, आध्यात्मिकता, तितिक्षा और अनन्त प्रेम विद्यमान हो। इन गुणों के होने पर ही तुम धार्मिक पुरुष हो सकते हो। जब हमारे शास्त्रों में ये सभी सुन्दर सुन्दर भाव वर्तमान हैं और हमारे देश में ऐसे महान् जीवन के उदाहरण स्वरूप विद्यमान हैं, तब अगर योगियों के हृदय और मस्तिष्क से उत्पन्न विचार सर्व-साधारण में प्रचारित हो कर धनी गरीब आदि ऊँच नीच सब की सम्पत्ति नहीं होता, तो यह बहुत दुख की बात है। इन सब तत्वों को भारत ही में नहीं फैलाना होगा वरन् सारे ससांर में उन्हें

फैलाना होगा। हम लोगों का यही एक कर्तव्य है। और जितना ही तुम दूसरों की सहायता करने को तैयार होगे, त्योंही तुम देखोगे कि तुम अपना ही भला कर रहे हो। अगर सच-मुच तुम अपने धर्म को चाहते हो, अगर वास्तव में अपने देश को प्यार करते हो, तो तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिए कि शास्त्रों में जो दुर्बोध रत्नराशि है; उसे लेकर जो उसके पाने के अधिकारी हैं, उन्हें बाँट दो। सब से बढ़कर हमें एक विषय पर दृष्टि डालनी होगी। हाय! हम लोग शताब्दियों ईर्ष्याद्वेष के विष से जर्जरित हो रहे हैं— हम लोग परस्पर एक दूसरे की हिंसा ही कर रहे हैं—अमुक हम से बड़ा क्यों हो गया—दिन रात इसी चिंता में हम लोग घुले जा रहे हैं! यही क्यों, धर्म कर्म में भी हम लोग इस से मुक्त नहीं हैं—हम लोग यहां तक ईर्ष्या के दास हो रहे हैं!—इसे हम लोगों को त्याग कर देना होगा। अगर भारत में किसी का बोलबाला है तो वह ईर्ष्या है। सभी आज्ञा देना चाहते हैं, आज्ञापालन के लिये काई तैयार नहीं है। पहले आज्ञापालन की शिक्षा प्राप्त करो, आज्ञा देने की शक्ति आप से आप चली आयगी। सदा सेवक बनने की शिक्षा प्राप्त करो, तभी स्वामी बनोगे। प्राचीन काल के ब्रह्मचर्य आश्रम के अभाव से ही यह सब गड़बड़ी फैल गई है। ईर्ष्या द्वेष को परित्याग करो, तभी तुम इस समय जो बड़े बड़े कार्य पड़े हुये हैं, उन्हें कर सकोगे। हमारे पुरुखों ने बड़े अद्भुत कर्म किये हैं, हम लोग भक्ति और श्रद्धापूर्वक उनके कार्य कलाप की आलोचना करते हैं—किन्तु

अब काम करने का समय आगया है—जिससे हमारे बाल बच्चे हमारे कार्यों की आलोचना करेंगे। हमारे पुरखे चाहे जितने बड़े और महत्वशाली क्यों न हुए हों, ईश्वर की कृपा से हम में से प्रत्येक ऐसे कार्य को करेगा जिससे उनका गौरव-सूर्य मलिन न हो।

वेदान्त

हम दो संसार में रहते हैं—एक आन्तरिक दूसरा बाह्य। प्राचीनकाल से प्रायः दोनों ही संसारों में उन्नति समानरूप से करता आ रहा है। गवेषणा पहले बाह्य संसार में आरम्भ हुई। गूढ़-से-गूढ़ प्रश्नों का उत्तर मनुष्य ने बाहरी प्रकृति से ही पाना चाहा। उसने अपनी अनन्त सौन्दर्य और चिदानन्द की तृष्णा को अपने चारो ओर की प्रकृति से ही बुझाना चाहा तथा अपनी आत्मा और अपनी भावनाओं को भौतिक संसार की भाषा में ही व्यक्त करना चाहा और उसे जो उत्तर मिले, ईश्वर और उपासना तत्व के सम्बन्ध में जो अद्भुत सिद्धान्त प्राप्त हुए उन्हें जिस भाषा में वर्णन किया वह बहुत ही अपूर्व है। बाह्य प्रकृति ने अत्यन्त कवित्व-मय विचारों को जन्म दिया; पर बाद को मनुष्य ने एक इससे भी अधिक सुन्दर, कवित्व-मय तथा कहीं अधिक विस्तृत संसार को खोज निकाला। वेदों के कर्मकाण्ड भाग में धर्म के अद्भुत तत्वों का वर्णन किया

मनुष्य की बहिर्जगत और अन्तर्जगत की गवेषणा

गया है, एक सर्व-शासक स्रष्टा, पालक और नाश करनेवाले परमात्मा के अद्भुत भावों का वर्णन किया गया है तथा इस ब्रह्माण्ड का आत्मा को हिला देने वाली भाषा में चित्रित किया गया है। आप लोगों में से बहुतों को ऋग्वेद-संहिता के उस अनुपम मंत्र का स्मरण होगा, जिसमें प्रलय का वर्णन किया गया है। यह सब होते हुए भी यह केवल बाह्य सौन्दर्य का चित्रण है, अतः हमें उसमें कुछ स्थूलता व कुछ भौतिकता अवश्य दिखाई देती है। यह अनन्त का सान्त की भाषा में वर्णन है। यह अनन्त भी शरीर का है, न कि आत्मा का, स्थूल प्रकृति का न कि सूक्ष्म अन्तर्ज्योति का। अतः दूसरे भाग ज्ञान-काण्ड में एक दूसरे ही मार्ग का अनुसरण किया गया है। पहले सत्य की खोज बाह्य-प्रकृति में की गई थी। जीवन की गहन-से-गहन समस्याओं का उत्तर भौतिक प्रकृति से पाने की चेष्टा की गई थी।"

"यस्यैते हिमवन्तो महित्वा।"

यह हिमालय पर्वत जिसकी महिमा की घोषणा करते हैं। यह बहुत ही सुन्दर विचार है फिर भी भारतवर्ष के लिये काफ़ी सुन्दर न था। भारतीय मस्तिष्क इस मार्ग को छोड़ने के लिये बाध्य हुआ। भारतीय खोज बाह्य से आन्तरिक में, भौतिक से आत्मिक में आरम्भ हुई। "अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके" इत्यादि की पुकार आरंभ हुई। जब मनुष्य मर जाता है, तो उसका क्या होता है?"

"कोई कहते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा रहता है, कोई कहते हैं कि नहीं रहता। हे मृत्यु, बताओ इनमें सत्य क्या है ?" यहाँ पर हम देखते हैं कि मार्ग बिल्कुल ही भिन्न हो गया है। बाह्य-प्रकृति से जो मिल सकता था, भारतीय मस्तिष्क ने उसे ले लिया; पर उससे उसे सन्तोष न हुआ। इस ने और भी ज्यादा अनुसंधान किया उसने अपने भीतर, अपनी आत्मा में इस समस्या की खोज करनी चाही और अंत में उसे उत्तर मिला।

बहिर्जगत की खोज से अरुचि, अन्तर्जगत की खोज

वेद के इसी भाग का नाम उपनिषद्, वेदान्त, अरण्यक और रहस्य है। यहाँ पर हम देखते हैं कि धर्म ने भौतिकता से बिलकुल ही नाता तोड़ दिया है। यहाँ पर आत्मज्ञान का संसार की भाषा में नहीं, वरन् आत्मा का आत्मा की ही भाषा में, अनन्त का अनन्त की ही भाषा में वर्णन किया गया है। अब इस कविता में तनिक भी स्थूलता नहीं, भौतिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। उपनिषदों के प्रतिभाशाली महर्षियों ने कल्पनातीत निर्भयता के साथ, बिना किसी हिचक के मनुष्य-जाति में सुन्दर से सुन्दर सत्यों की दृढ़ घोषणा की है। हे मेरे देशवासियो, उन्हीं सत्यों को मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ; पर वेदों का ज्ञान-काण्ड एक विशाल सागर है। उसके थोड़े से भी भाग को समझने के लिये कई जीवनों की आवश्यकता है। रामानुज ने

उपनिषदों की विशेषता

उपनिषदों के बारे में सत्य ही कहा है कि वेदान्त वेदों का स्कन्ध और उन्नतशील भाग है। उपनिषद् ही हमारे देश की बाइबिल हैं। हिन्दुओं के हृदय में वेदान्त के कर्म-काण्ड भाग के लिये असीम सम्मान है; पर पीढ़ियों से सभी व्यावहारिक कार्यों के लिये श्रुति अर्थात् उपनिषदों और केवल उपनिषदों से ही काम लिया गया है। हमारे सभी बड़े दार्शनिकों ने, चाहे वह व्यास हों, चाहे पातञ्जलि, चाहे गौतम, चाहे सभी दर्शनों के पितामह कपिल ही क्यों न हों, जिन्हें कभी किसी बात के लिये प्रमाण देने की आवश्यकता पड़ी है, तो उन्होंने उपनिषदों का ही आश्रय लिया है। उपनिषदों में ही उन्हें सब प्रमाण मिले हैं; क्योंकि उपनिषदों में ही हमारे भारतीय ऋषियों ने सनातन सत्यों का प्रतिपादन किया है।

उनमें कुछ सत्य ऐसे हैं, जो देश-काल के अनुसार किन्हीं विशेष दशाओं में ही सत्य हैं तथा अन्य सत्य ऐसे हैं, जो अपनी सत्यता के लिए मनुष्य-प्रकृति पर ही निर्भर हैं और तब तक अमर सत्य रहेंगे, जब तक कि मनुष्य है। ये वे सत्य हैं, जो सर्व-देशीय और सर्व-कालीन हैं। भारतवर्ष में खान-पान, रहन-सहन, पूजा-उपासना आदि के अनन्त सामाजिक परिवर्तनों के होने पर भी हमारी श्रुतियों के अलौकिक सत्य, वेदान्त के ये अद्भुत तत्त्व आज भी सदा की भाँति अपनी महिमा के साथ अजेय और अजर-अमर भाव से स्थिर हैं।

सार्वकालिक और युग धर्म

उपनिषदों में जिन विचारों का विस्तृत प्रतिपादन किया गया है, मूल-रूप में उनका वर्णन कर्म-काण्ड में पहिले ही किया गया है। ब्रह्माण्ड का विचार, जिसमें सभी वेदान्तियों को विश्वास है तथा वे विचार जो सभी दर्शनों की समान रूप से नींव हैं, पहिले से ही वहाँ विद्यमान हैं। इसलिये वेदों के गूढ़ भागों में जाने के पहले ही मैं इस कर्म-काण्ड भाग के विषय में कुछ बातें कह देना चाहता हूँ। पहिले मैं वेदान्त को किस अर्थ में युक्त करता हूँ उस शब्द का अर्थ ही साफ़-साफ़ बताता हूँ। दुख की बात है कि हम लोग एक भ्रम में पड़ जाते हैं। आज-कल बहुत से लोग समझते हैं कि वेदान्त शब्द से केवल अद्वैत-वाद का बोध होता है, पर आप लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि अध्ययन के लिये हमारे यहाँ प्रस्थान त्रय हैं।

उपनिषदों के तत्त्व बीज संहिता में वर्तमान हैं

सबसे पहिले श्रुति उपनिषद् हैं, दूसरे व्यास सूत्र। फिर हमारे दर्शनों में व्यास के सूत्र हैं, जो कि सभी प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तों की समष्टि होने के कारण बहुत विख्यात हैं। वे एक दूसरे के विरुद्ध नहीं, वरन् एक ही विकास पाते हुए सिद्धान्त के नाना रूप हैं। इसी विकास का अन्त व्यास के सूत्रों में हुआ है। उपनिषदों के और सूत्रों के, जिनमें वेदान्त के सुन्दर सत्यों का स्पष्ट और क्रमानुसार संग्रह है, बीच में वेदान्त की अलौकिक व्याख्या श्री गीता का स्थान है। चाहे

प्रस्थान त्रयी-वेदान्त शब्द का असली अर्थ

द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी हो, चाहे वैष्णव हो, चाहे शैव हो, भारतवर्ष के सभी सम्प्रदायों ने अपनी सत्यता सिद्ध करने के लिये इन्हीं तीन उपनिषद्, गीता और व्यास-सूत्रों में से ही प्रमाण दिए हैं। शङ्कराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य—जिस किसी ने भी अपना नया धर्म चलाना चाहा है, उसी ने इन्हीं तीन विचार-व्यवस्थाओं पर अपना एक नया भाष्य लिख डाला है। अतएव उपनिषदों से उत्पन्न किसी विशेष विचार-व्यवस्था को ही वेदान्त का नाम देना अनुचित होगा। वेदान्त शब्द से वास्तव में इन सभी मतों का बोध होता है। यह सभी व्यवस्थाएँ आ जाती हैं। एक रामानुज-सम्प्रदायी अपने-आपको उतना ही वेदान्ती कह सकता है, जितना कि एक अद्वैत-वादी। यही नहीं मैं तो इससे भी एक क़दम आगे बढ़कर यह कहूँगा कि 'हिन्दू' से हमारा अर्थ वेदान्ती से ही होता है। वेदान्ती कहने से भी हिन्दू का बोध होता है।

अद्वैतवाद आदि सभी मत सनातन हैं

आप लोगों को एक बात और ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि यह तीनों दर्शन-व्यवस्थाएँ भारतवर्ष में अनन्त काल से प्रचलित हैं—आप लोगों को यह न समझना चाहिए कि शङ्कराचार्य ही अद्वैत-वाद के विधाता थे, अद्वैत-वाद शङ्कराचार्य के उत्पन्न होने के पूर्व सहस्रों वर्षों से ही यहाँ था, वह उसके केवल अन्तिम प्रतिपादक थे—फिर भी मेरे स्वल्प-ज्ञानानुसार वे एक दूसरे के विरुद्ध

नहीं हैं। इसी प्रकार रामानुज-सम्प्रदाय, जैसा कि उस पर लिखी गई व्याख्याओं से विदित है, रामानुज के जन्म के सहस्रों वर्ष के पहले से ही यहाँ विद्यमान था। इसी प्रकार अन्य मत-मतान्तरों के साथ सभी प्रकार के द्वैत-वाद भी यहाँ थे, फिर भी यह सब एक दूसरे के विरोधी न थे।

ये सभी मत एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

जिस प्रकार हमारे छः दर्शन एक ही सुन्दर सिद्धान्त के सुन्दर विकास हैं। जो संगीत पहले धीमे मधुर-स्वरों में आरम्भ हुआ था, अन्त में वह अद्वैत-वाद के वज्र विवाद में परिणत हुआ उसी प्रकार इन तीनों व्यवस्थाओं में हम मनुष्य को उच्च-से-उच्च आदर्शों की ओर बढ़ते पाते हैं, अन्त में सभी वाद अद्वैत-वाद की अनुपम एकता में लीन हो जाते हैं। इसलिए यह एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

दूसरी ओर मैं यह भी बता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि इस प्रकार की भूल कुछ एक दो ने नहीं की है। अद्वैत-वादी जो पाठ अद्वैत-वाद का वर्णन करता हैं, उसे तो अपना रखता ही है, जो द्वैत-वाद अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाले सिद्धान्तों का वर्णन करता है, उसे भी तोड़-मरोड़कर वह अपना स्वेच्छित-अर्थ निकालता है। इसी प्रकार द्वैतवादी भी अद्वैत-वाद के पाठ को तोड़-मरोड़कर उसका स्वेच्छित अर्थ निकालते हैं। हमारे गुरु-जन महान् पुरुष थे, फिर उनमें दोष थे और गुरु जनों के दोष भी कहे जाने चाहिएँ। जैसा कहा है कि "दोषा वाच्या

गुरोरपि" मैं समझता हूं कि केवल यहाँ पर वे भ्रम में पड़ गये थे। हमें पाठों को तोड़-मोड़कर अनोखे स्वेच्छित अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं है, न किसी प्रकार की बेईमानी द्वारा धर्म व्याख्या करने की ज़रूरत है और न व्याकरण की बारीकियों पर मत्थापच्ची करने की ही ज़रूरत है।

भाष्यकारों का एक देशीय सिद्धान्त

जिन श्लोकों से वे भाव कभी नहीं निकल सकते, उनके भीतर उन भावों को घुसाने का कभी प्रयत्न न करें। इन का सीधा सादा समझना बहुत सहज है और जभी तुम अधिकार भेद के रहस्य को समझोगे तभी वे तुम्हें बिल्कुल ठीक जान पड़ेंगे।

यह सत्य है कि उपनिषदों का एक ही मुख्य विषय है— "वह कौन सा सत्य है, जिसे जान लेने पर सभी मालूम होने लगता है।" कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति। मुं० १।३। आजकल की भाषा में उपनिषदों का ध्येय, जैसा कि सभी ज्ञान का ध्येय होता है, बहुरूपता में एकता को पाना है और इसीका नाम ज्ञान है। सभी ज्ञान-विज्ञान इसी बहुरूपता में एकता खोजते हैं। आज-कल का क्षुद्र पदार्थ-विज्ञान जिसे हम 'साइंस' कहकर पुकारते हैं, यदि कुछ पदार्थों और प्रकृति-भागों में एकता ढूँढ़ना चाहता है, तो कल्पना कीजिए इस अनन्त नाम और अनन्त रूप वाले विशाल ब्रह्माण्ड में, जहाँ प्रत्येक पदार्थ दूसरे पदार्थ से शक्ति और आकार में भिन्न है, जहाँ

लक्ष्य एक होने पर भी अधिकार भेद से

असंख्य आकार-प्रकार, असंख्य विचार, असंख्य लोक हैं, एकता का ढूँढ़ निकालना कितना महान् कार्य है और इसी एकता को पाना ही उपनिषदों का ध्येय है। यह हम समझते हैं। किसी को ध्रुव-तारा दिखाना होता है, तो पास का खूब चमकता हुआ तारा उसे दिखाया जाता है और फिर क्रमशः ध्रुव-तारा। इसी तरह सूक्ष्म ब्रह्म तत्व को समझाने के पहले सत्यासत्य अनेक स्थूल भावों को समझाने के बाद क्रमशः उच्च भावों का उपदेश दिया गया है। यही क्रम हमारा भी होगा और मुझे अपने विचार को सत्य सिद्ध करने के लिए आप लोगों के सामने केवल उपनिषदों को रखना होगा। प्रायः प्रत्येक अध्याय का आरम्भ द्वैत-वादी उपासना से होता है। इसके बाद ईश्वर सृष्टि का सृजन करनेवाला, उसका पोषक तथा जिसमें वह अन्त में लय हो जाता है, ऐसा बताया जाता है। बाह्य और अन्तर्प्रकृति का स्वामी विश्व का वह उपास्य देवता बताया जाता है, फिर भी मानों उसका अस्तित्व प्रकृति से कहीं बाहर हो। इससे एक पग आगे बढ़ने पर हम उसी गुरु को यह बताते पाते हैं कि ईश्वर प्रकृति से परे नहीं, वरन् उसी में अन्तर्व्याप्त है। अन्त में यह दोनों ही विचार छोड़ दिये जाते हैं और जो कुछ भी सत्य है, वही ईश्वर बताया जाता है। कोई अन्तर नहीं रहता। "तत्त्वमसि श्वेतकेतो!" अन्त में यह बताया जाता है कि मनुष्य की आत्मा और वह सर्व-व्यापी एक ही है।" "श्वेतकेतु, वह तू ही है।" यहाँ पर कोई समझौता नहीं किया गया है। दूसरे के मिथ्या विचारों से कोई सहानुभूति नहीं

दिखाई गई। सत्य, दृढ़ सत्य की निर्द्वन्द्व भाषा में घोषणा की गई है और उस दृढ़ सत्य को आज भी उसी निर्द्वन्द्व भाषा में घोषणा करने में हमें भयभीत न होना चाहिए। ईश्वर की कृपा से मैं समझता हूँ कि उस सत्य के निर्भयता-पूर्वक प्रचार करने का साहस मुझ में है।

अच्छा, अब पहिले प्रसंग की अनुवृत्ति करके पहले ज्ञातव्य तत्वों की आलोचना की जाय—एक वेदान्त वादी जिस पर एक मत है उस जगत् सृष्टि के प्रकरण और मनस्तत्व के सम्बन्ध में समझना होगा। दूसरी संसार और सृष्टि आदि के विषय में उनके पृथक्-पृथक् विचार। मैं पहले सृष्टि प्रकरण को लेता है। आधुनिक विज्ञान के नव-नव आविष्कार और नई-नई खोजें आकाश से गिरनेवाली बिजलियों के समान आपको चकित कर देती हैं। जिन बातों को आपने स्वप्न में भी न सोचा था, वे ही आँखों के सामने आती हैं, पर जिसे 'फ़ोर्स' वा शक्ति कहा जाता है, मनुष्य ने उसे बहुत दिनों पहिले ही ढूँढ़ निकाला था। यह तो अभी कल ही जाना गया है कि विभिन्न शक्तियों में भी एकता है। मनुष्य ने हाल ही में पता लगाया है कि जिन्हें वह 'हीट' (गर्मी), मैग्नेटिज्म (आकर्षण), एलेक्ट्रि-सिटी (विद्युत्) आदि नामों से पुकारता है, वे सब एकही 'यूनिट फोर्स' (एक शक्ति) के नाना रूप हैं, आप उसे चाहे जो नाम दें। यह विचार संहिता में ही है। संहिता की ही भाँति प्राचीन यह शक्ति वा 'फोर्स' का विचार है। सभी शक्तियाँ, उन्हें

आकर्षण, प्रत्याकर्षण, विद्युत्, गर्मी आदि चाहे जिन नामों से पुकारो, वे सब कुछ नहीं हैं, एक पग भी आगे नहीं। या तो वे अन्तःकरण से उत्पन्न विचारों के रूप में प्रकट होती हैं अथवा मनुष्य की अन्तरिन्द्रियों के रूप में जिनकी प्रजनन-शक्ति एक 'प्राण, है। फिर प्राण क्या है? प्राण स्पन्दन है। प्रलय के अनन्तर जब यह समस्त ब्रह्माण्ड अपने आदि रूप में हो जायगा, तब इस अनन्तशक्ति का क्या होगा? क्या उसका अन्त हो जायगा? ऐसा, तो हो नहीं सकता। यदि उसका अन्त हो जावे, तो दूसरी शक्ति-धारा का कारण क्या होगा; क्योंकि शक्ति तरंगों के समान ऊपर-नीचे उठती-गिरती बहती है? ब्रह्माण्ड के इस विकाश को हमारे शास्त्रों में 'सृष्टि' कहा है। ध्यान रखिये सृष्टि और अँग्रेज़ी का Creation शब्द एक नहीं है। अँग्रेजी में संस्कृत शब्दों का ठीक ठीक अनुवाद नहीं होता, प्रकाश होना, ज्ञात होना। प्रत्येक पदार्थ विकसित होते हुए अपनी चरम दशा पर पहुँचकर फिर अपने आदि रूप को प्राप्त होता है, जहाँ पर कुछ देर के लिये स्थिर हो वह पुनः उत्थान के लिये तैयार होता है। इसी क्रम का नाम सृष्टि है। फिर इन शक्तियों का, प्राणों का क्या होता है? वे आदि प्राण में लय हो जाते हैं और यह प्राण प्रायः स्थिर हो जाता है—बिल्कुल ही स्थिर तो नहीं पर प्रायः स्थिर हो जाता है और वैदिक सूत्र 'आनीदवातम्' ऋग्वेद १०। १२६-२ सूक्त में इसीका वर्णन किया गया है। बिना स्पन्दन के उसमें स्पन्दन हुआ, वेदों में बहुत से पारिभाषिक

शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ लगाना बहुत कठिन है, खासकर उनके विशेष शब्दों के प्रयोग में। उदाहरण के लिए वात शब्द को लीजिए। कभी इसका अर्थ होता है, हवा और कभी होता है गति। बहुधा लोग एक के स्थान में दूसरे का अर्थ लगा लेते हैं। इस बात का हमें ध्यान रखना होगा। "वह उस रूप में स्थित था और जिसे तुम भौतिक प्रकृति कहते हो, उसका क्या होता है? सभी प्रकृति शक्तियों में व्याप्त है, जो कि हवा में लय हो जाती है। उसीमें से वे पुनः निकलती हैं और सबसे पहिले 'आकाश' निकलता है। आप उसे 'ईथर' आदि चाहे जो नाम दें, सिद्धान्त यह है कि प्रकृति का आदि रूप यही 'आकाश' है। जब प्राण की क्रिया आकाश पर होती है, तब उसमें स्पन्दन होता है और जब दूसरी सृष्टि होने को होती है, तब यही स्पन्दन तीव्रतर हो जाता है और फिर आकाश शत-शत तरंगों में विभक्त हो जाता है, जिन्हें हम सूर्य, चन्द्र आदि नामों से पुकारते हैं।

"यदिदम् किञ्च जगत् सर्वम् प्राण एजति निःसृतम्।"

"प्राणों के निस्पन्दन से ही सृष्टि का जन्म हुआ है।" 'एजति' शब्द पर आपको ध्यान देना चाहिए; क्योंकि वह 'एज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—स्पन्दन करना। निःसृतम्—निकली है, यदिदम् किञ्च—जो कुछ भी यह ब्रह्माण्ड है।

यह सृष्टि-क्रम का थोड़ा सा आभास दिया गया है। इसमें और भी बहुत सी बारीकियाँ हैं। जैसे इस क्रिया का संपूर्ण वर्णन—किस प्रकार पहिले आकाश उत्पन्न महत् से आकाश होता है, फिर उसमें से अन्य पदार्थ किस और प्राण की प्रकार उत्पन्न होता है और उसके कम्पन उत्पत्ति से वायु उत्पन्न होती है; पर इनमें से एक बात स्पष्ट है कि स्थूल की सूक्ष्म से उत्पत्ति होती है। स्थूल प्रकृति बाह्य है और इसकी सबसे बाद में उत्पत्ति हुई है, इसके पहिले सूक्ष्म प्रकृति थी। एक के ही दो रूप हो जाते हैं, जिनमें कोई समान ऐक्य दिखाई नहीं देता; पर उनमें प्राण की एकता है और आकाश की भी। क्या और भी किसी की एकता है? क्या वे एक में मिल सकते हैं? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ पर चुप रहता है। उसने इसकी कोई मीमांसा नहीं की है और यदि वह मीमांसा करेगा तो वही उपनिषदोंवाला मार्ग ग्रहण करने पड़ेगा। जिस प्रकार कि उसे हमारे प्राचीन ऋषियों ने 'प्राण' और 'आकाश' का तत्व आविष्कार किया था। दूसरी एकता उस निर्गुण सर्व-व्यापी की है, जिसका नाम 'महत्' है तथा जिसे पुराणों में चतुर्मुख ब्रह्मा कहा गया है। यहाँ पर उन दोनों का मिलन होता है। जो तुम्हारा 'मस्तिष्क' है, वह इसी महत् का एक क्षुद्रतम भाग है और सभी मस्तिष्कों के जोड़ को समष्टि कहते हैं।

पर अभी खोज पूरी नहीं हुई। यह और आगे बढ़ी। यहाँ पर, हम लोग छोटे परमाणुओं के समान हैं, जिनकी समष्टि ही यह ब्रह्माण्ड है, पर जो कुछ व्यष्टि में हो रहा है, हम बिना किसी भय के अनुमान कर सकते हैं कि बाहर भी वैसा ही होता होगा। यदि अपने मस्तिष्क की क्रियाओं के निराकरण करने की शक्ति हम में होती, तो शायद हम जान पाते कि उनमें भी वैसा ही हो रहा है, पर प्रश्न यह है कि यह मस्तिष्क है क्या? वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों में जब पदार्थ-विज्ञान आशातीत उन्नति करता हुआ पुराने धर्मों के क़िले पर क़िले जीतता चला जाता है, वहाँ के लोगों को स्थिर रहने का स्थान नहीं मिलता, क्योंकि पदार्थ-विज्ञान ने प्रति पग पर मस्तिष्क और दिमाग़ को एक बतलाया है, जिससे उन्हें बड़ी निराशा हुई है, पर हम भारतवासी तो यह रहस्य सदा से जानते थे। हिन्दू बालक को सबसे पहिले यही सीखना होता था कि मस्तिष्क भौतिक प्रकृति का ही एक अधिक सूक्ष्म रूप है। बाह्य शरीर तो स्थूल है, उसके भीतर सूक्ष्म शरीर है। यह भी भौतिक है; पर अधिक सूक्ष्म है, पर 'आत्मा' फिर भी नहीं है। इस शब्द का मैं आप लोगों के लिए अंग्रेज़ी में रूपान्तर न करूँगा; क्योंकि इसका विचार यूरोप में है ही नहीं। इसका रूपान्तर हो ही नहीं सकता। जर्मन दार्शनिकों ने उसका रूपान्तर 'सेल्फ़' शब्द से किया है; पर जब तक वह सर्व-मान्य न हो जावे, उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। अतः उसे 'सेल्फ़'

मन जड़ है

आदि चाहे जिन नामों से पुकारिये, है वह यही हमारी 'आत्मा' स्थूल शरीर के पीछे यह आत्मा ही

आत्मा

वास्तविक मनुष्य है। आत्मा ही स्थूल मस्तिष्क से, अन्तःकरण से, (जो कि उसका विशेष नाम है) काम कराती है। और मस्तिष्क अन्तरिन्द्रियों के द्वारा हमारी बहिरिन्द्रियों से काम करता है। यह मन क्या है ? पाश्चात्य दार्शनिकों ने तो अभी कल ही जान पाया है कि आँखें ही देखने की वास्तविक इन्द्रियाँ नहीं हैं, वरन् इनके पीछे वे अन्तरिन्द्रियाँ हैं, जिनके नष्ट होने पर हमारे यदि इन्द्र के

इन्द्रियां क्या हैं ?

समान सहस्र आँखें भी हों फिर भी हम देख न सकेंगे। यहीं तो, तुम्हारा सारा दार्शनिक विचार ही यह सिद्धान्त मानकर आरम्भ होता है कि आँखों की दृष्टि सच्ची दृष्टि नहीं है। सच्ची दृष्टि तो मस्तिष्क की अन्तरिन्द्रियों की है। उन्हें आप जो चाहें कहें; पर बात असली यह है कि हमारे नाक, कान, आँखें आदि हमारी वास्तविक इन्द्रियाँ नहीं हैं। सभी इन्द्रियों और मानस, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारक को मिलाकर अँग्रेजी में mind कहते हैं। अतः यदि वर्तमान वैज्ञानिक तुमसे आकर कहता है कि मनुष्य का दिमाग ही मस्तिष्क है और इतनी इन्द्रियों से बना है, तो तुम उससे कह दो कि हमारे यहाँ के विद्वान् यह हमेशा से ही जानते थे, हमारे धर्म का तो यह वर्ण परिचय मात्र है।

अच्छा, तो अब समझना यह है कि मानस, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि का क्या अर्थ है। पहिले चित्त का अर्थ समझना चाहिये—वास्तव में यही अन्तःकरण का उपादान स्वरूप है। महत् का यही एक भाग है। मस्तिष्क और उसकी सभी दशाओं का बोध चित्त से होता है। मान लीजिये एक झील है, जो कि संध्या समय बिल्कुल ही शान्त है. उसमें एक छोटी सी भी लहर नहीं उठती। समझिये यही चित्त है। अब यदि उसमें कोई छोटा सा पत्थर फेंकता है, तो क्या होता है? पहिले पानी में पत्थर लगने की क्रिया होती है, फिर पानी में ही पत्थर के विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है, जो कि एक लहर का रूप ले लेती है। पहिले तो पानी में थोड़ा सा कम्पन होता है, फिर शीघ्र ही प्रतिक्रिया होती है, जो कि लहर बन जाती है। हमारा चित्त इसी झील के समान है और बाह्य पदार्थ उसमें फेंके हुए पत्थरों के समान हैं। जैसे ही उसका इन्द्रियों द्वारा बाह्य पदार्थों से संयोग होता है, बाह्य पदार्थों को अन्दर ले जाने के लिये वहाँ इन्द्रियाँ ज़रूर होनी चाहिए। तब वहाँ स्पन्दन होता है, जिसका नाम मानस, संशयात्मक अनिश्चित् है। इसके पश्चात् प्रतिक्रिया होती है जो निश्चयात्मिका बुद्धि होती है और इसी बुद्धि के साथ ही अहम् और बहिर्पदार्थ का ज्ञान साथ ही उत्पन्न होता है। मान लीजिये मेरे हाथ पर एक मच्छर बैठकर डँसता है। इन्द्रियों द्वारा चित्त में उसके कारण थोड़ी सनसनी पहुँचती है और उसमें थोड़ा स्पन्दन होता है। हमारे मनो-विज्ञान के मत

से उसी का नाम मन है। इसके अनन्तर ही प्रतिक्रिया होती है और शीघ्र ही इसका ज्ञान होता है कि मेरे हाथ पर एक मसा बैठा है, जिसे मुझे उड़ाना होगा। इसी प्रकार चित्त-रूपी झील में पत्थर फेंके जाते हैं, अन्तर केवल इतना है कि झील में पत्थर बाहर से ही फेंके जाते हैं, चित्त में भीतर से भी फेंके जा सकते हैं। चित्त और उसके विभिन्न अवस्थाओं का नाम अन्तःकरण है।

वस्तुज्ञान की रीति और अद्वैतवाद

पहले जो कुछ कहा गया है उससे आपको एक बात और समझ लेनी चाहिए, जो आपको अद्वैतवाद समझने में सहायता देगी। आपमें से बहुतों ने मोती देखे होंगे और बहुतों को मालूम भी होगा कि मोती किस प्रकार बनते हैं। सीप के मुँह में कोई बालू का कण चला जाता है, जिससे उसके उदर में पीड़ा उत्पन्न होती है। सीप के शरीर में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप वह बालू पर अपना रस गिरा देती है। वही इकट्ठा और कठोर होकर मोती बन जाता है। यह ब्रह्माण्ड भी उसी मोती के समान है। उसके बनानेवाले हमी हैं। बाह्य संसार से हमारे चित्त में केवल थपेड़ लगती है, जिससे उसमें प्रतिक्रिया होती है और जब बुद्धि कार्य करती है, तब हम उस बाह्य संसार को जान पाते हैं। इस प्रकार संसार का जो हमारे मस्तिष्क में प्रतिबिम्ब स्थिर होता है, उसे ही हम संसार समझते हैं। उसके आकार-प्रकार को हमारे मस्तिष्क ने ही निश्चित किया है। इसलिये आजकल के वैज्ञानिक दिनों में

बाह्य संसार की, यथार्थता में कट्टर विश्वास करनेवालों को भी इसमें शङ्का न होगी कि यदि बहिर्जगत को हम 'क' नाम से पुकारते है, तो जो हम जानते हैं वह 'क' + मस्तिष्क है और इस ज्ञान क्रिया में मस्तिष्क-भाग इतना विशद है कि उसने समस्त 'क' को ढँक लिया है। पर 'क' सदा से अज्ञात् और अज्ञेय है। इसलिये अज्ञात् अज्ञेय बाह्य संसार के विषय में जो कुछ हम जानते हैं, वह हमारे मस्तिष्क का ही गढ़ा हुआ है। यही बात आन्तरिक संसार में हमारी 'आत्मा' के विषय में भी है। आत्मा को जानने के लिए उसे मस्तिष्क द्वारा ही जानना होगा और जो कुछ थोड़ा भी हम आत्मा के विषय में जानते हैं, वह आत्मा + मस्तिष्क है, अर्थात् मन के द्वारा आवृत, मन के द्वारा परिणत या गठित आत्मा को ही हम जानते हैं। उस विषय को हम लोग फिर लेंगे; पर अभी इतना याद रखना चाहिये।

इसके बाद समझने की बात यह है। यह शरीर भौतिक प्रकृति की सतत बहती हुई धारा का नाम है। प्रतिक्षण हम उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ते जाते हैं और प्रतिक्षण ही उसमें से कुछ-न-कुछ निकलता जाता है, जिस प्रकार की एक बहती हुई विशाल नदी में सैकड़ों मन पानी पल-पल में अपना स्थान बदलता रहता है। इस समस्त को एक वस्तु मानकर हम उसे 'नदी' का नाम देते हैं। पर वास्तव में नदी है क्या? प्रतिक्षण तो पानी बदलता रहता है, तट बदलते रहते हैं, किनारे के वृक्ष,

फल, फूल, पत्ते सभी बदलते रहते हैं। फिर नदी कहाँ है? नदी इसी परिवर्तन-क्रम का नाम है; यही बात मन के सम्बन्ध में भी है, बौद्धों ने इसी क्रमिक परिवर्तन को लक्ष्य करके इस महान क्षणिक विज्ञान वाद मत की सृष्टि की। उसे ठीक ठीक समझना अत्यन्त कठिन है पर जिसका निराकरण बौद्धों में अत्यन्त तर्क और न्याय के साथ किया गया है। भारतवर्ष में ही वेदान्त के कुछ भागों के विरोध में इसका जन्म हुआ था। इसका भी उत्तर देना था और हम देखेंगे किस प्रकार इसका उत्तर केवल अद्वैत-वाद ही दे सका था। हम बाद में यह भी देखेंगे किस प्रकार अद्वैत-वाद के विषय में लोगों की विचित्र धारणा और भयान्वित विचारों के होते हुए भी अद्वैत-वाद ही संसार का मुक्ति-मार्ग है; क्योंकि न्याय और तर्क के साथ संसार की समस्याओं का उत्तर उसीमें है। द्वैत-वाद आदि उपासना के लिए बहुत अच्छे हैं, मानव-हृदय को सन्तोष देते हैं, और शायद आत्म-ज्ञान की उन्नति में भी थोड़ी-बहुत सहायता देते हैं; पर यदि मनुष्य विचार निष्ठ और धर्म परायण होना चाहता है, तो उसके लिए संसार में अद्वैत-वाद ही एक गति है।

क्षणिक विज्ञान वाद और अद्वैत-वाद

जो हो, हम पहले से देख चुके हैं कि मन भी देह की तरह नदी के समान है, जो एक सिरे पर निरन्तर भरा करती है और दूसरे सिरे पर खाली होती रहती है। तो वह एकता कहाँ है, जिसे हम आत्मा कहते हैं? हम देखते हैं कि शरीर और मस्तिष्क में सतत

परिवर्तन होने पर भी हम में कुछ ऐसी बात है जो अपरिवर्तनीय है कई दिशाओं से आती हुई प्रकाश की किरणें, यदि किसी पर्दे या दीवाल या अन्य किसी वस्तु पर, जोकि परिवर्तन-शील न हों, गिरें, तभी वे एकता और सम्पूर्णता प्राप्त कर सकती हैं। इसी प्रकार वह स्थान कौनसा है, जहाँ पर मानव इन्द्रियों के केन्द्रीभूत होने से उसके सभी विचार एकता और सम्पूर्णता को प्राप्त होंगे? यह स्थान मन तो हो नहीं सकता; क्योंकि मन भी परिवर्तन-शील है। इसलिये कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जो कि न तो शरीर हो, न आत्मा. तथा जिसमें कभी परिवर्तन न होता हो और जिस पर हमारे सभी विचार और भाव एकत्रित होकर एकता और सम्पूर्णता प्राप्त कर सकें। यही वस्तु वास्तव में मनुष्य की आत्मा है। यह देखते हुए कि सभी भौतिक प्रकृति, चाहे उसे तुम सूक्ष्म कहो, चाहे मस्तिष्क कहो, परिवर्तनशील है तथा स्थूल प्रकृति और यह बाह्य संसार उसके समक्ष क्षणिक है, वह अपरिर्तनशील आत्मा किसी भौतिक पदार्थ की बनी हुई नहीं हो सकती। वह आत्मिक अर्थात् भौतिक नहीं है, वरन् अविनाशी और स्थिर है। इसके बाद एक और प्रश्न उठता है।

आत्मा अचल और अखंड है

इस बाह्य संसार को किसने बनाया? भौतिक प्रकृति को किसने जन्म दिया? आदि प्रश्नों को, जो कि सृष्टि के सम्बन्ध में उत्पन्न होते हैं, छोड़कर अब एक दूसरा प्रश्न है। सत्य को यहां मनुष्य की अन्तर्प्रकृति से जानना है और यह प्रश्न भी

इसी भाँति उठता है, जिस प्रकार कि आत्मा के विषय में प्रश्न उठा था। अगर यह मान लें कि प्रत्येक पुरुष में एक अविनाशी और स्थिर आत्मा है, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उन आत्माओं में विचार, भाव व सहानु-भूति की एकता होनी चाहिये। नहीं तो किस तरह मेरी आत्मा किस यंत्र के द्वारा किस प्रकार तुम्हारी आत्मा को प्रभावित कर सकती है? मेरे हृदय में तुम्हारी आत्मा के विषय में कोई भी भाव व विचार कैसे उत्पन्न होता है? वह क्या है, जिसका सम्बन्ध हम- दोनों की आत्माओं से है? इसलिये एक ऐसी आत्मा मानने की वैज्ञानिक आवश्यकता है, जिसका सम्बन्ध सभी आत्माओं व प्रकृति से हो, एक ही आत्मा जो कि असंख्य आत्माओं में

परमात्मा

ओत प्रोत भाव से व्याप्त हो, उनमें पारस्परिक सहानुभूति व प्रेम उत्पन्न करती हो और एक से दूसरे के लिए कार्य कराती हो। यह सभी आत्माओं में व्याप्त विश्व का उपास्य देवता, परमात्मा है। जो सारे संसार के स्वामी हैं। साथ ही परिणाम यह भी निकलता है कि आत्मा के स्थूल प्रकृति से बड़े न होने के कारण वह स्थूल प्रकृति के नियमों से बाध्य भी न होगी। हमारे प्राकृतिक नियम उस पर लागू न होंगे। इसलिये वह अविनाशी और स्थिर है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

"आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती । आत्मा अदाह्य, अभेद्य और अशोष्य तथा स्थिर, अचल, सनातन व सर्वव्यापक है ।" तब यह आत्मा क्या करती है ? गीता के और वेदान्त के भी अनुसार आत्मा विभु है तथा कपिल के अनुसार सर्व-व्यापी भी । निस्सन्देह भारतवर्ष में ऐसे मत हैं, जिनके अनुसार यह आत्मा 'अणु' है, पर उनका तात्पर्य यह है कि प्रकट होने में ही वह 'अणु' है, उसकी वास्तविक प्रकृति तो 'विभु' है ।

इसके साथ ही एक और विषय पर विचार करना होगा जो कि देखने में पहले कुछ अद्भुत प्रतीत होता है; पर है भारतवर्ष के लिये बिलकुल ही स्वाभाविक । हमारे सभी धर्मों और सम्प्रदायों में वह विद्यमान है । इसलिये मैं आप लोगों से उस पर विशेष ध्यान देने और उसे याद रखने के लिये प्रार्थना करता हूँ । विचार यह है । पश्चिम के जिस भौतिक विकास-वाद (Evolution) के सिद्धान्त का जर्मन और अंग्रेज विद्वानों ने प्रचार किया है, उसके विषय में आप लोगों ने सुना होगा । उनका कथन है कि विभिन्न पशुओं के शरीर वास्तव में एक हैं, एक ही नियमित क्रम के वे भिन्न-भिन्न रूप हैं । एक क्षुद्रतम

कीट से लेकर एक महान-से-महान मनुष्य तक सभी एक हैं। एक दूसरे के रूप में बदलता जाता है और इस प्रकार ऊँचे चढ़ते-चढ़ते अंत में वह संपूर्णता प्राप्त कर लेता है। हमारे यहाँ भी यह विचार था। योगी पातञ्जलि कहतेहैं—"जात्यंतर पारणामः।" एक जाति का दूसरी जाति में परिवर्तन (परिणाम) होता है। हमारे और पाश्चात्यों के विचार में फिर अन्तर कहाँ रहा? "प्रकृत्यापूरात्।" प्रकृति के पूरे होने से। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि जीवन-संग्राम में प्रति द्वन्द्विता होने होड़ा-होड़ी से तथा नर-मादे के सम्बन्ध-विचार आदि से एक शरीर अपना रूप बदलता है; पर यहाँ पर एक और भी सुन्दर विचार है, समस्या का एक और भी सुचारु निराकरण है—"प्रकृत्यापूरात।" इसका अर्थ क्या है? हम यह मानते हैं कि एक क्षुद्रतम कीट में स्थित-जीव धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ बुद्ध बनता है; पर साथ ही हमें यह भी विश्वास है कि किसी मशीन से तुम यथेच्छ काम तब तक नहीं ले सकते, जब तक कि उसे तुम दूसरे सिरे पर न रक्खो। शक्ति का परिमाण एक ही रहेगा, रूप उसका चाहे जो हो। यदि शक्ति का कोई परिमाण तुम एक सिरे पर रखना चाहते हो, तो दूसरे सिरे पर भी तुम्हें शक्ति का वही परिमाण रखना होगा, रूप उसका चाहे जो हो। इसलिये यदि परिवर्तन-क्रम का एक सिरा बुद्ध है, तो दूसरा सिरा वह क्षुद्र-जीव अवश्य होगा। यदि

प्राच्य और पाश्चात्य विकास-वाद

बुद्ध उसी जीव का सम्पूर्ण विकास पाया हुआ रूप है, तो वह जीव भी बुद्ध का अविकसित रूप रहा होगा। यदि यह ब्रह्मांड अनन्त शक्ति का प्रकटीकरण है, तो प्रलय की दशा में इसी शक्ति का वह अविकसित रूप रहा होगा। अन्यथा हो नहीं सकता। इसका परिणाम यह निकलता है कि प्रत्येक आत्मा अनन्त है। उस छोटे-से-छोटे कृमि से लेकर, जोकि तुम्हारे पैरों के नीचे रेंगता है, बड़े-से-बड़े महात्मा तक—सभी में यह अनन्त शक्ति, यह अनन्त पवित्रता और सब कुछ अनन्त है। भिन्नता केवल प्रकटित रूप में है। कृमि उस शक्ति-की एक बहुत ही थोड़ी मात्रा को प्रकट करता है, तुम उससे अधिक, एक महात्मा तुम से भी अधिक। अन्तर बस इतना ही है। फिर भी है तो। पातञ्जलि कहते हैं—"ततः क्षेत्रिकावत्।" "जिस प्रकार किसान खेत सींचता है।" अपने खेत को सींचने के लिए उसे एक जलाशय से पानी लाना है, जिसमें मान लीजिये एक बाँध बँधा है, जिसके कारण पानी खेत में सम्पूर्ण वेग से नहीं आ सकता। जब उसे पानी की आवश्यकता होगी, तब उसे केवल उस बाँध को हटा देना होगा और पानी खेत में आकर भर जायगा। शक्ति बाहर से नहीं लाई गई, जलाशय में वह पहिले से ही थी। इसी प्रकार हम में से प्रत्येक के पीछे ऐसी ही अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, चिदानन्द, अमर जीवन का विशाल सिन्धु भरा हुआ है, केवल इन शरीररूपी बाँधों के कारण हम अपनी सम्पूर्णता का अनुभव नहीं कर सकते। जैसे ही हमारे शरीरों की स्थूलता छटती

जाती है और वे सूक्ष्म होते जाते हैं, तमोगुण रजोगुण हो जाता है और रजोगुण सतोगुण हो जाता है, वैसे ही यह शक्ति, यह पवित्रता और भी अधिक प्रकट होती है। इसीलिए हमारे यहाँ खान-पान के विषय में इतना विचार किया गया है।

यह हो सकता है कि वास्तविक विचारों का लोप हो गया हो जैसे कि बाल-विवाह के विषय में, जो यद्यपि विषय के बाहर है पर मैं उदाहरण के लिए लेता हूँ। यदि फिर कभी समय मिला, तो इन बातों के बारे में भी मैं आपसे कुछ कहूँगा। बाल-विवाह के पीछे जो विचार छिपे हुए हैं, आप सच्ची सभ्यता उन्हीं से प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। समाज में यदि स्त्री-पुरुषों को अपनी पति-पत्नी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय, उन्हें अपनी व्यक्तिगत वासनाओं की तृप्ति करने के लिए मैदान साफ़ मिले, तो सन्तान अवश्य ही दुष्टात्मा और निर्दय उत्पन्न होगी। देखो न प्रत्येक देश में मनुष्य ऐसे ही दुष्ट सन्तान को जन्म दे रहा है और उसीके साथ समाज की रक्षा के लिये पुलिस-दल की संख्या को भी बढ़ा रहा है। इस प्रकार बुराई का नाश करने से कोई फल न होगा, वरन् किस तरह ये सब बुराइयाँ दूर हों, यही एक बड़ी समस्या है। जब तक तुम समाज में रहते हो, तब तक तुम्हारे विवाह से मैं और समाज का प्रत्येक जन बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। इसीलिए समाज को अवश्य अधिकार है कि वह तुम्हें आज्ञा दे

बाल विवाह का मूल कारण

कि तुम किसके साथ विवाह करो और किसके साथ न करो। ऐसे ही विचार बाल-विवाह के पीछे थे। इसीलिए लड़के-लड़की की जन्म-पत्री आदि मिलाई जाती थी। मनु के अनुसार तो जो बच्चा कामेच्छा के तृप्त करने से उत्पन्न होता है, वह आर्य नहीं होता। सच्चा आर्य तो वह होता है, जिसका गर्भ में आना व मृत्यु वेदों के ही अनुसार होती है। इस प्रकार की आर्य सन्तान प्रत्येक देश में न्यूनातिन्यून संख्या में उत्पन्न की जाती है और इसीलिए हम संसार में इतनी बुराई देखते हैं, जिसे कलियुग कहा जाता है, पर हम लोग यह सब आदर्श खो चुके हैं। यही नहीं कि इन विचारों का हम भली-भाँति पालन नहीं कर सकते; उनमें से बहुतों का तो खींच खाँचकर हमने तमाशा बना डाला है। निस्संदेह हमारे माता-पिता आज वह नहीं हैं, जो कि पहिले थे। न समाज ही पहिले की भाँति सुशिक्षित और सभ्य है, न हमें एक दूसरे से वैसा प्रेम ही है फिर भी हमारा सिद्धान्त सच्चा है। यदि उसके अनुसार किया गया कार्य दोषपूर्ण है, एक बार यदि काम करने में हम से भूल हुई है, तो सिद्धान्त को क्यों छोड़ते हो? एक बार फिर कार्य आरम्भ करो। इसी प्रकार खान-पान के भी विषय में समझो। सिद्धान्त के अनुसार किया गया कार्य बहुत ही दोषपूर्ण और त्रुटियों से भरा हुआ है फिर भी इससे सिद्धान्त सत्य और अमर है। अपने कार्य को सुधार-सहित एक बार फिर आरंभ करो।

भारतवर्ष में सभी सम्प्रदाय वालों को 'आत्मा' के इस महान् तत्व पर विश्वास करना पड़ता है। अंतर केवल इतना है

आत्मा की स्वतः सिद्ध-पूर्णता में द्वैत और अद्वैत-वादी एक मत हैं

कि द्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा पाप-कर्म करने से संकुचित हो जाती है, उसकी शक्तियों और वास्तविक प्रकृति में सङ्कोच होजाता है, अच्छे कर्म करने से वह फिर अपनी आदि-दशा को प्राप्त होती है। अद्वैत-वादी कहते हैं कि आत्मा कभी घटती-बढ़ती नहीं, ऊपर से ही वैसा प्रतीत होता है। सारा अन्तर वस इतना ही है; पर सभी धर्मों का यह विश्वास है कि आत्मा की शक्तियाँ उसीके पास रहती हैं, आकाश से आकर उसमें कुछ टपक नहीं पड़ता। इस पर विशेष रूप से लक्ष्य करना चाहिये कि वेद inspired वाहर से भीतर में नहीं आये। वे भीतर से वाहर को आये हैं। प्रत्येक आत्मा में रहनेवाले वे अमर धर्म हैं। एक देवता की आत्मा में और एक चींटी की आत्मा में वेद समान-रूप से हैं। चीटीं को केवल विकास पांकर कोई महात्मा व ऋषि ही वनना है कि वेद, वे अमर धर्म, अपने आप प्रकट हो जाँयगे। ज्ञान का यह एक महान् सिद्धान्त है कि हमारी शक्ति सदा हमारी ही थी, हमारा मोक्ष हमारे ही भीतर था। चाहे कहो कि आत्मा संकुचित हो जाती है, चाहे कहो कि उस पर माया का पर्दा पड़ जाता है, कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। मुख्य वात एक ही है और आपको उसमें विश्वास करना चाहिये, विश्वास करना चाहिये कि जो कुछ एक वुद्ध के लिये संभव है वही एक छोटे-से-छोटे पुरुष के लिये भी संभव है। यही हिन्दुओं का 'आत्मा' का सिद्धान्त है।

किन्तु यहीं पर एक विकट युद्ध बौद्धों से आरम्भ होता है। वे शरीर को भौतिक प्रकृति की सतत बहती हुई धारा बताते हैं तथा उसी तरह मन को भी हमारी ही भाँति निराकरण करते हैं। 'आत्मा' के विषय में वे कहते हैं कि इसका अस्तित्व स्वीकार करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। एक सगुण पदार्थ की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है। हम कहते हैं केवल गुणों को ही मानो। जहाँ एक कारण मानने से काम चल सकता है, वहाँ दो को मानना न्याय-विरुद्ध है। इसी प्रकार युद्ध होता रहा और आत्मा के विषय में जितने सिद्धान्त थे, सभी पर बौद्धों ने विजय पाई। जो आत्मा के सिद्धान्त को माननेवाले थे कि हममें तुममें सभी में आत्मा है, जो कि शरीर और मन दोनों से भिन्न है, अब उनमें खलबली पड़ गई। अभी तक हम देख चुके हैं कि द्वैतवाद ठीक उतरता चला आया है, क्योंकि एक शरीर है, उसके बाद सूक्ष्म मन, उसके बाद आत्मा और इन सब आत्माओं में व्याप्त एक परमात्मा है कठिनाई अब यहाँ पड़ती है कि आत्मा और परमात्मा दोनों ऐसे माने हुए पदार्थ हैं, जिनके शरीर और मन गुणों के समान हैं। किसी ने इस पदार्थ को देखा तो है नहीं, न उसकी कल्पना ही की जा सकी है, फिर उसके बारे में सोच-विचार करने का क्या फल होगा? क्षणिक विज्ञानवादी होकर यह क्यों न कहा जाय कि मानसिक तरंगों के अतिरिक्त और

आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध में बौद्धों की सम्मति

किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। परिवर्तन की एक दशा का दूसरी से कोई सम्बन्ध नहीं। सागर की लहरों के समान वे एक दूसरी का अनुसरण करती हैं, पर कभी एकता व सम्पूर्णता नहीं प्राप्त करतीं। मनुष्य इसी प्रकार की तरङ्गों का अनुक्रमण है, एक चली जाती है, तो दूसरी उसका अनुसरण करती है और जब इस क्रम का अन्त हो जाता है, उस दशा का ही नाम निर्वाण है। आप लोगों ने देखा है कि लोग इस सम्बन्ध में बिलकुल चुप हैं।

द्वैतवाद का यहाँ कोई तर्क नहीं चलता, न द्वैतवादी ईश्वर ही यहाँ अपनी जगह पर खड़ा रह सकता है। द्वैतवादी ईश्वर सर्व-व्यापी होने के साथ ही बिना हाथों के बनाता है और बिना पैरों के चलता है। जैसे कुम्हार घट बनाता है, उसी भाँति वह ब्रह्मांड को बनाता है। बौद्ध कहता है कि यदि ईश्वर ऐसा ही है, तो वह उसकी उपासना करने के बजाय उससे युद्ध करेगा। संसार दारुण दुःखों से भरा हुआ है और यदि यह कार्य ईश्वर का किया हुआ है, तो वह अवश्य उसके विरुद्ध उठ खड़ा होगा। इसके साथ ही, जैसा कि आप सभी को विदित होगा, ऐसे ईश्वर भी कल्पना तर्क और न्याय के विरुद्ध है, ऐसा ईश्वर असंभव है। क्षणिक विज्ञान वादियों की भाँति हमें इस सृष्टि के दोषों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं; पर द्वैत-वादियों के व्यक्तिगत ईश्वर का ढेर हो गया। तुम्हारा तो कहना है कि हमें केवल सत्य चाहिए। "सत्यमेव जयते नानृतम्।" मुण्डक ३।१।६

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य द्वारा ही तुम देवयान मार्ग को पा सकते हो। सभी पहिले सत्य के झण्डे को उड़ा कर चले थे, पर केवल कमज़ोर मनुष्यों को पददलित करने के लिए। द्वैतवादी ईश्वर को लिए हुए और अपने को बड़ा ज्ञानी समझते हुए तुम एक ग़रीब मूर्ति-पूजा करने वाले से झगड़ने लगे। तुमने सोचा कि हमीं को सत्य ज्ञान मिला है, इस अज्ञानी का नाश कर देना चाहिए; पर यदि वह लौट पड़ा और तुम्हारे ही ईश्वर, तुम्हारे उस काल्पनिक आदर्श को उसने छिन्न-भिन्न कर डाला, तो फिर तुम कहाँ रहे? या तो तुम कहने लगे कि हमें 'फेथ' है, विश्वास है या सदा के कमज़ोर मनुष्यों की भाँति अपने विरोधियों से पुकारने लगे—"तुम लोग नास्तिक हो!" जब हारने लगे, तब नास्तिकता की गुहार मचाने लगे। यदि तुम तर्क और न्याय पर रहते हो, तो दृढ़तापूर्वक उन्हीं पर स्थिर रहो और यदि विश्वास पर रहते हो, तो अपनी भाँति दूसरे को भी अपने विश्वास पर स्थिर रहने दो। तुम ईश्वर की सत्ता कैसे सिद्ध कर सकते हो? उसकी सत्ता खण्डन करना इससे कहीं अधिक सरल है? उनकी सत्ता सिद्ध करने के लिए कोई भी प्रमाण नहीं, उसका खण्डन करने के लिए अवश्य प्रमाण है। अपना ईश्वर, उसकी सगुणता एक ही पदार्थ की बनी हुई भिन्न-भिन्न असंख्य आत्माएँ—इन सबके सिद्ध करने के लिए तुम्हारे पास क्या प्रमाण हैं? आप दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं? शरीर से तो नहीं; क्योंकि आप आज बौद्धों से भी भलीभाँति जानते हैं कि शायद जो प्रकृति-

भाग अभी सूर्य में रहा होगा, वही क्षण में आपके शरीर में मिल जायगा और थोड़ी देर में वही जाकर पौधों में मिल जायगा। फिर महाशयजी, आपका व्यक्तित्व कहाँ रहता है? यही बात मन के संबन्ध भी है। रात में तुम्हारा एक विचार है, सवेरे दूसरा। जैसा तुम बचपन में सोचते थे, वैसा अब नहीं सोचते और जैसा कोई वृद्ध-पुरुष अब सोचता है, वैसा उसने अपनी युवावस्था में न सोचा था। फिर तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ है? यह न कहो कि तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारी ज्ञान-शक्ति, तुम्हारे अहङ्कार में है, क्योंकि यह बहुत ही संकुचित है। मैं अभी तुम से बात-चीत कर रहा हूँ और मेरी इन्द्रियाँ सब अपना काम भी किये जाती हैं; पर मुझे इसका ज्ञान नहीं है। यदि ज्ञान ही जीवन का चिह्न है, तब तो इन्द्रियाँ हैं ही नहीं, क्योंकि मुझे उनके कार्य का ज्ञान नहीं होता। फिर आप अपना व्यक्ति विशेष ईश्वर लेकर कहाँ रहोगे? ऐसे ईश्वर को आप किस प्रकार प्रमाणित कर सकेंगे।

बौद्ध फिर खड़े होकर बोले कि ऐसा ईश्वर तर्क और न्याय के ही विरुद्ध नहीं है, उसकी उपासना करना पाप है। मनुष्य कायर होकर दूसरे के सामने सहायता के लिए गिड़गिड़ाता है। कोई भी उसकी इस प्रकार की सहायता नहीं कर सकता। यह देखो संसार है, मनुष्य ने उसे बनाया है। फिर एक कल्पित ईश्वर की उपासना क्यों करते हो, जिसे न किसी ने देखा-सुना है, न जिससे किसी ने सहायता पाई है। फिर जान-बूझकर कायर क्यों बनते हो? कुत्ते के समान इस कल्पित व्यक्ति के सामने जाकर तुम नाक

रगड़ते हो और कहते हो—"हम बड़े ही कमज़ोर हैं, बड़े ही अपवित्र हैं। संसार में पतितों के सिरताज हमीं हैं।" अपनी सन्तान के सन्मुख रखने को सबसे सुन्दर तुम्हें यही कायरता का आदर्श मिला है? इस प्रकार तुम एक मिथ्या कल्पना में ही विश्वास नहीं करते; वरन् अपनी सन्तान में घोर बुराई को जन्म दे महत् पाप के भागी होते हो। याद रक्खो, यह संसार इच्छा-शक्ति पर निर्भर है। जैसा तुम अपने मन में सोचते हो, उसीमें तुम विश्वास करते हो। बुद्ध के यह प्रायः पहिले ही शब्द थे—"जैसा तुम सोचते हो, वैसे तुम हो, जैसा तुम सोचोगे, वैसे तुम होगे।" यदि यह सच है तो यह मत सीखो कि हम कुछ नहीं हैं और जब तक आकाश में बैठा हुआ ईश्वर हमारी सहायता न करेगा, तब तक हम कुछ नहीं कर सकते। इसका परिणाम यही होगा कि तुम दिन पर दिन और भी कमज़ोर होते जाओगे। तुम ईश्वर से कहोगे—"हे ईश्वर! हम बहुत अपवित्र हैं, तू हमें पवित्र कर!" फल यह होगा कि तुम और भी अपवित्र होगे, और भी पापों में लिप्त होगे। बौद्ध कहते हैं कि जितनी बुराइयाँ तुम किसी समाज में देखते हो, उनमें से ६० फ़ीसदी इसी व्यक्तिगत ईश्वर की उपासना के कारण होती है। इस सुन्दर, इस अनुपम जीवन की सार्थकता कुत्ता बनकर दूसरे के सामने दुम हिलाने में ही है! कैसी जघन्यता है! बौद्ध वैष्णव से कहता है—यदि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य और ध्येय वैकुण्ठ जाना और वहाँ अनन्त

काल तक हाथ बाँधे ईश्वर के सामने खड़ा रहना ही है, तो इससे तो आत्महत्या करके मर जाना ही अधिक श्रेयकर होगा। बौद्ध यह भी कह सकता है कि इसीसे बचने के लिये उसने निर्वाण बनाया है।

मैं आप लोगों के ठीक बौद्धों की तरह ये बातें कह रहा हूँ, जिससे आपको दोनों पक्षों के विचारों का पूर्ण ज्ञान होजावे। आज-कल कहा जाता है कि अद्वैतवाद के द्वारा लोग दुर्नीति परायण हो जाते हैं। इसीलिये दूसरे पक्ष को क्या कहना है, वही आप लोगों को बतला रहा हूँ। मुझे दोनों पक्षों की निर्भीकता पूर्वक कहना होगा। हम देख चुके हैं कि इस सृष्टि को बनानेवाला व्यक्तिगत ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता। आज कोई बच्चा भी क्या ऐसे ईश्वर में विश्वास करेगा? एक कुम्हार घड़ा बनाता है, इसलिये परमेश्वर भी यह संसार बनाता है—यदि ऐसा है, तब तो कुम्हार भी परमेश्वर है और यदि कोई कहे कि ईश्वर बिना सिर पैर और हाथों के रचना करता है, तो उसे तुम बेशक पागलखाने ले जा सकते हो। आधुनिक विज्ञान का दूसरा चैलेञ्ज यह है— "अपने व्यक्तिगत ईश्वर से, जिसके सामने तुमने जन्म भर चिल्लाये हो, क्या कभी कोई सहायता पाई है?" वैज्ञानिक यह सिद्ध कर देंगे कि रोने-गिड़गिड़ाने में तुमने व्यर्थ ही अपनी शक्ति खर्च की। जो कुछ सहायता मिली भी, उसे तुम बिना रोये-गिड़-गिड़ाये अपने प्रयत्नों से स्वयं ही उपार्जन कर सकते थे। इस व्यक्तिगत ईश्वर के विचार के साथ ही अत्याचार और धर्म-

गुरुओं का भी जन्म होता है। जहाँ भी यह विचार रहा है, वहाँ धर्म-गुरु और अत्याचार भी अवश्य रहे हैं। बौद्ध कहते हैं, जब तक तुम अपने मिथ्या सिद्धान्त का ही समूल नाश न कर दोगे, तब तक इस अत्याचार का अन्त नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य सोचेंगे कि उन्हें अपने से एक अधिक शक्तिशाली व्यक्ति से याचना करनी पड़ेगी, तब तक धर्मगुरु भी रहेंगे, ग़रीब आदमियों और ईश्वर के बीच में वे दलाली करने के लिए सदा तैयार रहेंगे और इसलिये अपने लिये विशेष अधिकार भी माँगेंगे। तुम ब्राह्मण जाति का समूल नाश करके सकते हो पर यह विशेष रूप याद रक्खो, वह स्वयं ही उसके स्थान में धर्मगुरु बन जायगा और पहलेवाले में तो थोड़ी दया भी थी, यह बिल्कुल ही निर्दय अत्याचारी होगा। यदि किसी भिखारी को थोड़ा सा धन मिल जाता है, तो वह सारे संसार को कुछ नहीं गिनता। इसलिये जब तक व्यक्तिगत-ईश्वर को उपासना रहेगी तब तक यह धर्म-गुरुओं का सम्प्रदाय भी रहेगा और तब तक समाज में उच्च भाव पैदा नहीं हो सकते। धर्म-गुरुओर अत्याचर हमेशा कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगे, फिर इनकी कल्पना किसने की? पुराने ज़माने में कुछ सबल पुरुषों ने शेष निर्बल पुरुषों को अपने वश में कर लिया और उनसे कहा—"तुम हमारा कहना न मानोगे, तो हम तुम्हें निर्मूल कर देंगे।" संक्षेप में इसी प्रकार व्यक्ति विशेष ईश्वर की कल्पना हुई थी, इसका और कोई कारण नहीं। "सभयम् वज्रमुद्यतम्।"

एक वज्र धारण करने वाला पुरुष जो था आज्ञा न मानता था उसीका नाश कर देता था। इसके बाद बौद्ध कहता हैं कि यहाँ तक तो तुम युक्तियुक्त कहते हो कि हमारी वर्तमान दशा हमारे पूर्व-कर्म का फल है। तुम सभी विश्वास करते हो कि आत्मा अनादि और अनन्त है, आत्माएँ असंख्य हैं, हमें पूर्व-कर्म का इस जन्म में फल मिलता है। यह सब तो ठीक है, क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता, भूत-कर्म का फल वर्तमान में मिलता है और वर्तमान-कर्म का भविष्य मे। हिन्दू कहता है कि कर्म जड़ है न कि चैतन्य इसलिए इस कर्म का फल देने के लिए किसी चैतन्य की आवश्यकता है, पर क्या पौधे को बढ़ाने के लिए भी चैतन्य की जरूरत होती है? यदि मैं बीज बोकर उसे पानी से सींचू, तब तो उसके बढ़ने में किसी चैतन्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। वृक्ष अपने ही आप बढ़ता है। तुम कह सकते हो, उसमें कुछ चैतन्य पहले से ही था; पर आत्मा भी तो चैतन्य है और चैतन्य का क्या करना है? यदि आत्मा चैतन्य है, तो बौद्धों के विरुद्ध आत्मा में विश्वास करने वाले जैनों के कथनानुसार, ईश्वर में विश्वास करने की क्या आवश्यकता है? हे द्वैत-वादी अब आप की युक्ति कहा है? आप की नीति की बुनियाद कहाँ है? और जब तुम कहते हो कि अद्वैत-वाद से पाप बढ़ा है, तब द्वैत-वादियों के कारनामों पर भी तो दृष्टि-पात करो, हिन्दुस्तान की कचहरियों की कितनी इन लोगों से आमदनी हुई है। यदि देश में बीस हज़ार अद्वैत-वादी बदमाश

हैं, तो द्वैतवादी बदमाश भी बीस हज़ार से कम नहीं हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो, द्वैतवादी ही बादमाश ज़्यादा होंगे, क्योंकि अद्वैतवाद को समझने के लिए अधिक अच्छा दिमाग़ चाहिए, जिसे भय और लोभ सहसा दबा न सकेगा। अब किसका सहारा लोगे? बौद्ध के पञ्जों से कोई छुटकारा नहीं। तुम वेदों का प्रमाण दो, उनमें उसे विश्वास नहीं। वह कहेगा—"हमारे त्रिपिटक कहते हैं, नहीं और उनका भी न आदि है न अन्त। स्वयं बुद्ध ने भी उन्हें नहीं बनाया, क्योंकि वह केवल उनका पाठ करते थे। त्रिपिटक सर्वकालीन हैं। बौद्ध यह भी कहते हैं कि तुम्हारे वेद झूठे हैं, हमारे ही सच्चे हैं। तुम्हारे वेद ब्राह्मणों की कल्पना है; इसलिए हटाओ उन्हें दूर!" अब बताओ किधर से भाग कर बचोगे?

बौद्धों के युक्ति जाल को काट फेंकने का उपाय बतलाया जाता है उनका पहला झगड़ा यही लो कि पदार्थ और गुण भिन्न-भिन्न हैं, अद्वैतवादी कहता है, नहीं हैं। पदार्थ और गुण भिन्न नहीं हैं। तुम्हें पुराना उदाहरण याद होगा कि किस प्रकार भ्रमवश रस्सी साँप समझी जाती है और जब साँप दिख जाता है, तब रस्सी कहीं नहीं रहती। पदार्थ और गुण का भेद विचारक के मस्तिष्क में ही होता है, वास्तव में नहीं।

अद्वैतवाद के द्वारा बौद्धमत और द्वैतमत का सामंजस्य

यदि तुम साधारण मनुष्य हो, तो तुम पदार्थ देखते हो और यदि बड़े योगी हो तो केवल गुण, पर दोनों ही

एक साथ तुम नहीं देख सकते। इसलिए बौद्ध जी, आपका पदार्थ और गुण का झगड़ा मानसिक भूल-भुलैयाँ भर था, वास्तविक नहीं; पर यदि पदार्थ निर्गुण है, तो वह केवल एक ही हो सकता है। यदि आत्मा परसे गुणों को हटा दो, तो दो आत्माएँ न रहेंगी; क्योंकि आत्माओं की भिन्नता गुणों के ही कारण होती है। गुणों के ही द्वारा तो तुम एक आत्मा को दूसरी आत्मा से भिन्न करके मानते हो, गुण तो वास्तव में हमारे मस्तिष्क में ही होते हैं, आत्मा में नहीं। जब गुण न रहेंगे, तब दो आत्माएँ भी न होंगी। अतएव आत्मा एक ही है, तुम्हारे परमात्मा की कोई आवश्यकता नहीं। यह आत्मा ही सब कुछ है। यही परमात्मा है, यही जीवात्मा भी। और सांख्य आदि द्वैतवाद जो आत्मा को विभु बताते हैं, सो दो अनन्त कैसे हो सकते हैं? यह आत्मा ही अनन्त और सर्व-व्यापी है, अन्य सब इसी के नाना रूप हैं।

इस उत्तर से तो बौद्ध जी रुक गए; पर अद्वैतवाद बौद्ध को चुप करके ही नहीं रुकता। अन्य कमज़ोर वादों की भाँति अद्वैतवाद दूसरों की आलोचना करके ही चुप नहीं हो जाता। *उसके अपने सिद्धान्त भी हैं। अद्वैतवादी, जब कोई* उसके बहुत निकट आ जाता है, तो उसे थोड़ा पछाड़ भर देता है और फिर अपने स्थान पर आ जाता है। एक मात्र अद्वैतवादी ही ऐसा है, जो कि आलोचना करके चुप नहीं रहता, अपनी पुस्तकें ही नहीं दिखाता, वरन् अपने सिद्धान्तों को भी बताता है।

अच्छा तो तुम कहते हो यह ब्रह्माण्ड घूमता है। व्यष्टि में प्रत्येक वस्तु घूमती है। तुम घूम रहे हो, यह मेज़ घूम रही है, गति सर्व हो रही हैं इसी से इसका नाम "संसार" है। (सृ धातु का अर्थ घूमना है) सतत घूमने से उनका नाम "जगत्" है। (गम् धातु क्विप जगत् अविराम गति!) इसलिए इस जगत् में कोई एक व्यक्तित्व हो नहीं सकता। व्यक्तित्व उसका होता है, जिसमें परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन-शील व्यक्तित्व कैसा? यह दोनों शब्द तो विरोधी हैं। इस जगत में, हमारे इस छोटे से संसार में, कोई भी व्यक्तित्व नहीं। विचार और भाव, मन और शरीर, पशु-पक्षी सभी हर समय परिवर्तन की दशा में रहते हैं। जो हो तुम समस्त ब्रह्माण्ड को समष्टि रूप में लो, तो क्या यह भी घूम सकता है, क्या इसमें भी परिवर्तन हो सकता है? कदापि नहीं। गति का ज्ञान तभी होता है, जब पास भी वस्तु की गति या तो कम हो या हो ही नहीं। इसलिये सारा ब्रह्माण्ड स्थिर और अपरिवर्तनशील है। इसलिए तुम एक व्यक्ति तभी होगे जबकि सारे ब्रह्माण्ड में मिल जाओगे जबकि "मैं ही ब्रह्माण्ड हूँगा"। इसीलिये वेदान्ती कहता है कि जब तक द्वंद्-भाव रहेगा तब तक भय का अन्त न होगा। जब दूसरे का भेद-ज्ञान नष्ट हो जाता है और एक ही एक रह जाता है तभी मृत्यु का नाश होता है। मृत्यु, संसार कुछ नहीं रहता। इसलिये अद्वैतवादी कहता है—"जब तक तुम अपने आपको संसार से भिन्न समझते हो, तब तक तुम्हारा कोई व्यक्तित्व नहीं। तुम तभी अपना व्यक्तित्व-

लाभ करोगे, जब ब्रह्माण्ड में मिलकर एक हो जाओगे।" सम्पूर्ण में मिलकर ही तुम अमरता प्राप्त करोगे। जब तुम ब्रह्माण्ड हो जाओगे, तभी तुम निर्भय और अविनाशी भी होगे। जिसे तुम ईश्वर कहते हो, वह यह ब्रह्माण्ड ही है, वह सम्पूर्ण है, वही तुम भी हो। इस एक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को साधारण स्थिति के हमारे से मस्तिष्क वाले सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि नाना रूपों में देखते हैं। जिन्होंने हमसे और अच्छे कर्म किए हैं, मरने पर वे इसे स्वर्ग, इन्द्र आदि के रूप में देखते हैं, जो इनसे भी ऊँचे होते हैं वे इसे ब्रह्म-लोक करके देखते हैं; पर जो सम्पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं, वे न मृत्युलोक देखते हैं, न स्वर्ग-लोक, न ब्रह्म-लोक। तब तो इस ब्रह्माण्ड का ही लोप हो जाता है और केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है।

ब्रह्म को जाना जा सकता है वा नहीं?

क्या हम इस ब्रह्म को जान सकते हैं? संहिता में अनन्त-चित्रण का वर्णन मैं आपसे कर चुका हूँ। यहाँ पर दूसरे अनन्त का वर्णन है। पहिला अनन्त भौतिक प्रकृति का था, यह अनन्त आत्मा का है। पहिले सीधी भाषा में उसका वर्णन कर दिया गया था; पर इसबार जब उस तरह काम न चला; तो नेति-नेति का आश्रय लेना पड़ा। यह ब्रह्माण्ड हम देखते हैं, इसे ब्रह्म मानते हुए भी क्या हम उसे मान सकते हैं? नहीं, नहीं, आप इस एक बात को भली-भाँति समझ रक्खें। बार-बार आपके हृदय में यह प्रश्न उठेगा कि यदि यह ब्रह्म है, तो हम उसे कैसे जान सकते हैं?

"विज्ञातारम् केन विजानीयात्।" हे मैत्रेयी, जानने वाले को किस प्रकार जाना जा सकता है? आँखें सब कुछ देखती हैं; पर क्या वे अपने आपको भी देख सकती हैं? नहीं, यदि वे देख ली जायँ, तो उनका महत्व ही कम हो जाय। हे आर्य सन्तानो, तुम इसतत्व को याद रक्खो; क्योंकि इसतत्व के भीतर एक बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। तुम्हें आकर्षण करनेवाले सभी पाश्चात्य विचारों की नींव यही है कि इन्द्रियों के ज्ञान की अपेक्षा ऊँचे ज्ञान नहीं हैं। हमारे वेदों में कहा गया है कि इन्द्रियों का ज्ञान ज्ञेय वस्तु से भी तुच्छ होता है क्योंकि वह सदा परिमित होता है। जब तुम किसी वस्तु को जानना चाहते हो, तो तुम्हारे मन के कारण वह तुरन्त परिमित होजाती है। पहले कहे हुए दृष्टान्त में यह कहा गया है कि किस प्रकार सीप से मोती बनता है। इस उदाहरण पर विचार करो और देखो किस प्रकार ज्ञान परिमित है। एक वस्तु को तुम जान पाते हो; पर पूर्णतया नहीं। सभी ज्ञान के विषय में यह बात घटित होती है। तब क्या अनन्त को तुम जान सकते हो? हमारी आत्माओं तथा समस्त विश्व में स्थित उस निर्गुण साक्षी को जो कि सभी ज्ञान का तत्व है, क्या तुम जान सकते हो? उस निःसीम को तुम किन सीमाओं से बाँध सकते हो?

जो कुछ देखते हो, वे सभी वस्तुएँ, यह सारा ब्रह्माण्ड ही अनन्त को जानने की निष्फल चेष्टा हैं। यह अनन्त आत्मा ही मानों छोटे-से-छोटे कीट से लेकर बड़े-से-बड़े देवता तक समस्त

प्राणी-रूपी दर्पणों में अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहती है और फिर भी उन्हें कम पाती है, यहाँ तक कि मानव शरीर में उसे इस बात का ज्ञान होता है कि यह सब ससीम और सान्त हैं। सान्त में अनन्त का प्रदर्शन नहीं हो सकता। इसके बाद पीछे लौटना आरम्भ होता है। इसी का नाम वैराग्य है, पर इन्द्रियों को छोड़ फिर इंद्रियों के पास न चलो। सभी सुख और सभी धर्म का मूल-मंत्र यह वैराग्य ही है, क्योंकि याद रक्खो, इस सृष्टि का आरंभ ही तपस्या से हुआ है। जैसे ही तुम्हें अधिकाधिक वैराग्य होता जायगा, वैसे ही सभी रूपों का लोप होता जायगा और अन्त में जो तुम हो वही रह जाओगे। इसी का नाम मोक्ष है।

वैराग्य का मूल तत्व

इस विचार को हमें भली-भाँति समझ लेना चाहिये। "विज्ञातारम् केन विजानीयात्।" वृहदा० २।४।१८ जाननेवाले को किस प्रकार जाना जाय? ज्ञाता को कभी जाना नहीं जा सकता क्योंकि यदि वह जान लिया जायगा, तो जानने वाला न रहेगा। दर्पण में तुम जिन आँखों को देखते हो वे, तुम्हारी वास्तविक आँखें नहीं, वरन् उनका प्रतिबिम्ब भर हैं। इसलिये यह सर्व-व्यापी और अनन्त आत्मा जो कि तुम हो, यदि केवल साक्षी है; तो क्या फ़ायदा हुआ? हमारी भाँति संसार में रहकर वह उसका सुख-भोग नहीं कर सकती। लोगों की समझ में नहीं आता कि साक्षी सुख का अनुभव कैसे

कर सकता है। "हिन्दुओ! तुम इस मिथ्या सिद्धान्त को मानकर बिल्कुल निकम्मे हो गए हो।" यह बात सभी लोग कहते हैं इसका उत्तर यह है कि पहले सुख का सच्चा अनुभव तो साक्षी ही कर सकता है। यदि कहीं कुश्ती हो, तो किसे अधिक आनंद आवेगा, देखनेवालों को या लड़नेवालों को? जीवन में जितना ही अधिक तुम किसी वस्तु को साक्षी होकर देखोगे, उतना ही अधिक तुम उसका आनन्द ले सकोगे। इसी का नाम प्रकृत आनन्द है, इसलिए अनन्त आनन्द तुम तभी पा सकोगे, जब साक्षी-रूप में इस सभी ब्रह्माण्ड को देखोगे, तभी तुम मुक्त पुरुष होगे। जो साक्षी स्वरूप है वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की किसी कामना के बिना कीर्ति-अपकीर्ति की इच्छा से कार्य्य कर सकता है। साक्षी को ही वास्तविक आनन्द मिलता है, अन्य को नहीं।

"अद्वैतवाद के नैतिक भाग की आलोचना करने में दार्शनिक और नैतिक भाग के बीच एक और विषय आ जाता है वह है माया वाद। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय को को समझने और समझाने के लिए महीने और वर्ष चाहिए। अतः यदि यहाँ मैं उनका संक्षेप में ही वर्णन करूँ तो, आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। माया के सिद्धांत को समझने में सदैव कठिनता पड़ी है। संक्षेप में मैं आपको बताता हूँ कि माया का वास्तव में कोई मत का सिद्धांत नहीं है। माया देश, काल और निमित्त के तीन विचारों का समुच्चय है; और भी

माया-वाद

घटाकर केवल नामरूप रह जाता है। मान लीजिए कि सागर में एक लहर आई है। लहर सागर से केवल नाम और रूप में ही भिन्न है और यह नाम रूप लहर से भिन्न नहीं किए जा सकते। अब लहर चाहे पानी में मिल जावे; पर पानी उतना ही रहेगा। यद्यपि अब लहर का नाम रूप नहीं रहा। इसी प्रकार यह माया ही हममें, तुममें, पशुओं और पक्षियों में, मनुष्यों और देवताओं में अन्तर डालती है। इस माया के ही कारण आत्मा अनन्त नाम रूप वाले पदार्थों में विभक्त दिखाई देती है। यदि नाम और रूप का विचार तुम छोड़ दो, तो तुम जो सदा थे, वही रह जाओगे। इसी को माया कहते हैं। फिर देखो, यह कोई मत का सिद्धान्त नहीं, वरन् जगत की घटनाओं का स्वरूप वर्णन मात्र है।

वस्तुओं के जानने की तीन सीढ़ियां

यथार्थवादी कहता है कि इस संसार का अस्तित्व है। वह अज्ञानी बच्चे की तरह कहता है कि इस मेज़ का एक अपना अस्तित्व है जिसका संसार की किसी वस्तु से सम्बन्ध नहीं तथा यदि यह सारा संसार नष्ट हो जावे, तो फिर भी यह रहेगी। थोड़े ही ज्ञान से पता चल जाता है कि यह भूल है। इस भौतिक संसार में प्रत्येक वस्तु अपने अस्तित्व केलिये दूसरी पर निर्भर है। हमारे ज्ञान की तीन सीढ़ियाँ हैं। पहिली तो यह कि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है एक दूसरी से भिन्न है। वस्तुओं की

पारस्परिक निर्भरता को समझना दूसरी सीढ़ी है। एक ही वस्तु है जिसके यह सब नाना रूप हैं—इस सत्य का ज्ञान अन्तिम सीढ़ी है।

अज्ञानी पुरुष की ईश्वर-विषयक पहली धारणा यह होती है कि वह कहीं संसार से अलग स्थित है अर्थात् ईश्वर की यह धारणा बहुत ही मानुषिक है। वह वही करता है, जो मनुष्य करता है, केवल अधिक परिमाण में। हम देख ईश्वर धारणा के ही चुके हैं कि ऐसा ईश्वर कितनी जल्दी न्याय तीन सोपान और तर्क के विरुद्ध तथा परिमित शक्तिवाला सिद्ध किया जा सकता है। ईश्वर सम्बन्धी दूसरा विचार एक सर्व-व्यापी शक्ति का है। यही प्रकृत सगुण ईश्वर है। चण्डी में ऐसे ही ईश्वर की कल्पना की गई है; पर ध्यान दीजिये, यह ईश्वर ऐसा नहीं है, जो केवल शुभ-गुणों की ही खान हो। अच्छे गुणों के लिये ईश्वर और दुर्गुणों के लिये शैतान, तुम दो को नहीं मान सकते। एक ही ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा और उसी पर विश्वास करके अच्छा बुरा दोनों कहना पड़ेगा और इस युक्ति संगत मत को स्वीकार करने पर जो स्वाभाविक सिद्धान्त हो उसे स्वीकार करना पड़ेगा

या देवी सर्वभूतेषु शान्ति रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः। ५। ४६

या देवी सर्व भूतेषु भ्रान्ति रूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः। ५। ७६ चण्डी।

जो सब प्राणियों में शान्ति और भ्रान्ति रूप में स्थित हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ।

जो हो उन्हें केवल शान्ति स्वरूप कहने से काम नहीं चल सकता, उसे सर्व स्वरूप कहने से उसका जो फल हो, उसे लेना पड़ेगा। "हे गार्गी, संसार में जहाँ कहीं भी सुख है, वह तेरा ही एक अंश है।" इसका उपयोग आप जो चाहें, करें। इसी प्रकाश में आप एक ग़रीब आदमी को सौ रुपये दे सकते हैं और दूसरा आपके जाली हस्ताक्षर कर सकता है; पर प्रकाश दोनों के लिये एक ही होगा। यही ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी सीढ़ी है। तीसरी सीढ़ी इस बात का ज्ञान होना है कि ईश्वर, न प्रकृति के बाहर है न भीतर; किन्तु ईश्वर, प्रकृति, आत्मा और ब्रह्माण्ड सब पर्यायवाची शब्द हैं। दोनों वस्तुयें वास्तव में एक नहीं है। कई दार्शनिक शब्दों ने आपको धोखे में डाल दिया है। आप समझते हैं कि हमारे एक शरीर है, एक आत्मा तथा दोनों मिलकर हम हैं। ऐसा कैसे हो सकता है? एकबार अपने ही मन में विचार करके देखिये। यदि आप लोगों में कोई योगी है, तो वह समझता है कि मैं चैतन्य हूँ। उसके लिये शरीर है ही नहीं। यदि आप साधारण पुरुष हैं, तो समझते हैं कि यह शरीर मैं हूँ; उस समय चैतन्य का ज्ञान एक दम जाता रहता है किन्तु मनुष्य को देह है, आत्मा है और भी कई वस्तुयें हैं, ये कई दार्शनिक

धारणायें रहने से उसे मालूम होता है कि ये एक ही रहती हैं। जब जड़ को देखते हो, तब ईश्वर की बात न करो। तुम केवल कार्य ही देखते हो, कारण नहीं देख सकते और जिस क्षण तुम कारण देख लोगे, उस क्षण कार्य रहेगा ही नहीं। यह संसार कहाँ है, उसे कौन लील गया?

किमपि सतत बोधं केवलानंद रूपं,
निरुपम मति वेलं नित्य मुक्तं निरीहम्।
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पम्,
हृदि कलयति विद्वान ब्रह्म पूर्णं समाधौ॥ ४१०॥
प्रकृति विकृति शून्यं भावनातीत भावं,
समरस मानसं बन्ध दूरं।
निगम वचन सिद्धं नित्यमस्मत् प्रसिद्धं,
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्मपूर्णं समाधौ॥ ४११॥
अजर ममरमस्ता भाव वस्तु स्वरूपं,
स्तिमित सलिल राशि प्रख्यमाख्या विहीनं।
शमित गुण विकारं शाश्वतं शान्त मेकं,
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ॥ ४१२॥

—विवेक चूड़ामणि

"ज्ञानी व्यक्ति समाधि अवस्था में अनिर्वचनीय, आनन्द स्वरूप, उपमा रहित, अपार, नित्य मुक्त, निष्क्रिय, असीम आकाश तुल्य, अंशहीन, और भेदशून्य पूर्ण ब्रह्म को हृदय में अनुभव करते हैं। ४१०

"ज्ञानी व्यक्ति समाधि अवस्था में, प्रकृति के विकारों से रहित, अचिंत्य रूप, समता के भाव से पूर्ण, जिसके समान कोई नहीं है, जिससे किसी परिमाण का सम्बन्ध नहीं है, जो वेद वाक्यों द्वारा सिद्ध है और सदा हम लोगों की दृष्टि में प्रसिद्ध हैं, ऐसे पूर्ण ब्रह्म को हृदय में अनुभव करते हैं।" ४११

"ज्ञानी लोग समाध अवस्था में जरा मृत्यु रहित, जो वस्तु स्वरूप हैं और जिन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं है, स्थिर जल राशि के समान, नाम रहित, सतोगुण रजोगुण, तमोगुण से रहित, शान्त पूर्ण ब्रह्म को हृदय में अनुभव करते हैं।" ४१२

मनुष्य जब इस दशा को प्राप्त होता है तब उस के लिये संसार का लोप हो जाता है।

हम यह देख चुके हैं कि इस सत्य, इस ब्रह्म को जाना नहीं जा सकता, अज्ञानवादियों की भाँति नहीं, जो कहते हैं ईश्वर जाना ही नहीं जा सकता, वरन् इसलिए कि उनको जानना अधर्म होगा; क्योंकि हम स्वयं ही ब्रह्म हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि यह मेज़ ब्रह्म नहीं है और फिर भी है भी दूसरे रूप में। नाम और रूप को हटा दो और जो कुछ यथार्थ में रहेगा वही ब्रह्म है। वह प्रत्येक वस्तु के भीतर सत्य रूप हैं।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि, त्वं जातो भवति विश्वतो मुखः। ४। ३

—श्वेताश्वतर उपनिषद्

"तू ही स्त्री हो, तू ही पुरुष हो, तू ही कुमार हो, तुम्हीं कुमारी हो, लाठी के सहारे खड़े हुए वृद्ध पुरुष तू ही। तू ही सब में है।" यही अद्वैतवाद है। इस सम्बन्ध में दो शब्द और कहूँगा। इसी अद्वैतवाद के द्वारा ही सभी वस्तुओं के मूलतत्व का रहस्य पाया जाता है। इसी के द्वारा ही खड़े होकर हम सभी तर्क और विज्ञान आदि का सामना कर सकते हैं। यहाँ पर कोरा विश्वास का आश्रय नहीं लेना पड़ता, वरन् अद्वैतवाद तर्क और न्याय की दृढ़ नींव पर स्थिर है। साथ ही वेदांती अपने से पूर्ववादों को गाली नहीं देता, वरन् उन्हें प्रेम की दृष्टि से देखता है, क्योंकि वह जानता है कि वे भी सत्य हैं, केवल वे समझे गलत गए थे और लिखे गलत गये थे। वे सब एक ही थे, माया के आवरण के कारण उनका रूप चाहे विकृत ही क्यों न होगया हो, फिर भी वे सत्य ही थे। जिस ईश्वर को अज्ञानी ने प्रकृति के बाहर देखा था, जिसे किञ्चिद् ज्ञानी ने विश्व में व्याप्त देखा था तथा पूर्ण ज्ञानी ने जिसे अपनी आत्मा करके जाना था—वे सब ईश्वर और यह ब्रह्माण्ड एक ही थे। एक ही वस्तु अनेक स्थानों से देखी गई थी। माया के कारण उसके अनेक रूप दिखाई दिये थे। सारा अन्तर और भेद माया के ही कारण था। यही नहीं, सत्य ज्ञान को पाने के लिये यह भिन्न-भिन्न सीढ़ियाँ हैं। विज्ञान और साधारण ज्ञान में क्या अन्तर है? सड़क पर जाओ और किसी गँवार से वहाँ पर घटी हुई किसी विचित्र घटना का रहस्य पूछो। सोलह में पन्द्रह आने तो वह

यही कहेगा कि यह भूतों का काम है। अज्ञानी कारण को सदैव कार्य के बाहर ही ढूँढ़ता है और इसीलिये वह सदैव घटना से, जिनका कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसे भूत-प्रेतों को ढूँढ़ निकालता है। यदि कहीं पत्थर गिरा है, तो वह कहेगा कि यह शैतान या भूत का काम है, पर वैज्ञानिक कहेगा कि वह प्रकृति के नियम या पृथ्वी की आकर्षणशक्ति के कारण गिरा है।

विज्ञान और धर्म का प्रतिदिन का झगड़ा क्या है? प्रचलित सभी धर्मों में संसार के कारण संसार के बाहर बताये गये हैं। एक देवता सूर्य में है, एक चन्द्रमा में। प्रत्येक घटना किसी बाहरी शक्ति, किसी भूत प्रेत या देवता के कारण होती है। कारण कार्य में ही नहीं ढूँढ़ा जाता। विज्ञान का कहना है कि प्रत्येक वस्तु का कारण उसी में रहता है।

अद्वैतवाद ही असली वैज्ञानिक धर्म है।

जैसे-जैसे विज्ञान ने बढ़ती की है, उसने संसार के रहस्यों की कुञ्जी भूत-प्रेतों के हाथ से छीन ली है और इसलिये अद्वैतवाद अत्यन्त वैज्ञानिक धर्म है। यह सृष्टि किसी बाहरी शक्ति, किसी बाहरी ईश्वर की बनाई हुई नहीं है। यह स्वयं जन्म लेनेवाली, स्थित रहनेवाली तथा स्वयं नाश को प्राप्त होनेवाली है। यह एक अनन्त जीवन है, ब्रह्म है। "तत्त्वमसि।" "हे श्वेतकेतु, वह तू ही है।" इस प्रकार तुम देखते हो कि अद्वैतवाद ही एक वैज्ञानिक धर्म हो सकता है। और दूसरा नहीं। अर्द्ध-शिक्षित भारतवर्ष में प्रति-दिन मैं जो विज्ञान, न्याय और तर्क आदि के विषय में लम्बी

थोड़ी बातें सुनाता हूँ, उनके होते हुए भी मैं आशा करता हूँ कि आप सब अद्वैतवादी होने का साहस कर सकोगे और बुद्ध के शब्दों में, "संसार के हित के लिये, संसार के सुख के लिये" उसका प्रचार करोगे। यदि ऐसा करने का साहस आप में नहीं है, तो मैं आपको कायर कहकर पुकारूँगा।

यदि आप में कायरता है, भय है, तो दूसरों को भी उतनी ही स्वतंत्रता दो। किसी ग़रीब उपासक की मूर्ति जाकर न तोड़ो। उसे शैतान कहकर चिढ़ाओ मत। जिसका आप के मूर्त्ति पूजकों से विचारों से सामञ्जस्य नहीं, उसे जाकर उपदेश घृणा न करो न देने लगो। पहिले यह जान लो कि आप स्वयं कायर हो। यदि आपके समाज से, अपने अन्ध विश्वासों से भय है, तो सोचो कि अन्य अज्ञानियों को उनसे कितना अधिक भय होगा। अद्वैतवादी कहता है कि दूसरों पर भी दया दिखाओ। ईश्वर की इच्छा से कल ही सारा संसार अद्वैतवादी हो जाता, अद्वैतवाद को सिद्धान्त रूप से ही न मानता वरन् उसे कार्य-रूप में भी लाता; किन्तु यदि वैसा नहीं हो सकता, तो सभी धर्मों से हाथ मिलाकर, धीरे-धीरे जैसे वे जा सकें, उन्हें सत्य की ओर ले चलो। याद रक्खो, भारतवर्ष में प्रत्येक धार्मिक प्रगति उन्नति की ही ओर हुई है, बुरे से अच्छे की ओर नहीं, वरन् अच्छे से और भी अच्छे की ओर।

अद्वैतवाद के नीतितत्त्व के विषय में दो शब्द और कहने हैं। हमारे बच्चे आजकल न जाने किससे सुन बड़ी जल्दी-जल्दी कहा

करते हैं कि अद्वैतवाद के द्वारा लोग पापी हो जायँगे; क्योंकि यदि हम सब एक हैं, और ईश्वर है तो हमें कोई धर्माधर्म का विचार करने की आवश्यकता नहीं। पहिली

अद्वैतवाद का नीतितत्व

बात, तो यह है कि यह तर्क पशुओं का है, जो कि बिना कोड़े के मान नहीं सकते। यदि तुम ऐसे ही पशु हो, तो कोड़े से ही माननेवाले मनुष्य से तुम्हारे लिए मर जाना ही अच्छा है। यदि कोड़ा खींच लिया जावे, तो तुम सब राक्षस हो जाओगे! यदि ऐसा ही है, तो तुम सब लोगों को मार डालना चाहिये, अन्य उपाय नहीं, क्योंकि बिना कोड़े और डंडे के तुम लोग रहोगे नहीं और इसलिये तुम लोगों को कभी मोक्ष-लाभ न होगा। दूसरी बात यह है कि अद्वैतवाद के द्वारा ही नीति तत्व की व्याख्या हो सकती है। प्रत्येक धर्म कहता है कि नीति तत्व का सार यही है कि दूसरों की भलाई करो। और क्यों? स्वार्थ को छोड़ दो। क्यों? किसी देवता ने ऐसा कहा है! कहने दो, मैं उसे नहीं मानता। हमारी धर्म-पुस्तक में लिखा है, लिखा रहने दो। मैं उसे मानने ही क्यों लगे। और संसार का धर्म क्या है, सब लोग अपना-अपना स्वार्थ-साधन करो, ग़रीब को अपनी मौत आप मरने दो। कम से कम संसार के अधिकांश जनों का यही धर्म है। इसी से कहता हूँ कि मैं नीति परायण हूँगा, इसके लिये युक्ति बतलाओ। अद्वैतवाद को छोड़ कर दूसरा कोई उसके लिये उपाय नहीं बतला सकता।

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

—१३-२८ गीता

"वह जो कि अपने को प्रत्येक प्राणी में और प्रत्येक प्राणी को अपने में देखता है और इस प्रकार सब प्राणियों में एक ही ईश्वर को स्थित जानता है, वही ज्ञानी आत्मा की आत्मा से हत्या नहीं कर सकता।"

अद्वैतवाद तुम्हें बताता है कि दूसरे की हिंसा कर तुम अपनी ही हिंसा करते हो; क्योंकि वह तुमसे भिन्न नहीं है। तुम जानो, चाहे न जानो; पर सभी हाथों से तुम काम करते हो, सभी पैरों से तुम चलते हो। राज-मन्दिर में विलास करनेवाले सम्राट् तुम्हीं हो और सड़क पर पड़े हुए भूख से त्राहि-त्राहि करने वाले भिखारी भी तुम्हीं हो। तुम ज्ञानी में हो और अज्ञानी में भी हो, तुम सबल में भी हो और निर्बल में भी हो। ऐसा जानकर हृदय में सहानुभूति को जन्म दो। जिस प्रकार दूसरे की हिंसा करने से अपनी ही हिंसा होती है, उसी कारण से हम को दूसरे की हिंसा न करनी चाहिये। और इसीलिये ही मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि मुझे खाने को मिलता है कि नहीं, क्योंकि लाखों मुख तो खाते होंगे और वे सब मेरे ही तो हैं। इसलिये मेरा चाहे जो हो, मुझे चिन्ता नहीं, क्योंकि यह सारा संसार मेरा है। उसके सारे आनन्द का उपभोग मैं कर रहा हूँ। मुझे, और इस ब्रह्माण्ड को कौन मार सकता है? इस प्रकार देखते हैं

कि यही अद्वैतवाद ही नीति तत्व की एक मात्र भित्ति है। दूसरे धर्म भी यही बात सिखाते हैं, पर उसका कारण नहीं बता सकते। जो हो, यहाँ तक देखने में यही आता कि अद्वैतवादी ही नीति तत्व की व्याख्या करने में समर्थ है।

अद्वैतवाद से लाभ क्या हुआ ? इससे शक्ति तेज, वीर्य प्राप्त होता है। "श्रोतव्यः मन्तव्या निदिध्यासितव्यः।" संसार के ऊपर जो तुमने माया का आवरण डाल रक्खा है, उसे दूर कर दो। मनुष्य-जाति में निर्बल शब्दों और विचारों का प्रचार न करो। यह जान रक्खो कि सभी पापों और बुराइयों की जड़ निर्बलता ही है। निर्बलता के ही कारण मनुष्य बुरे और जघन्य काम करता है, निर्बलता के ही कारण वह वे कार्य करता है, जो उसे करने न चाहियें, निर्बलता के ही कारण वह अपनी वास्तविकता को भूल और का और बन जाता है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि वे क्या हैं, जो कुछ वे हैं, उसका उन्हें रात दिन मनन करना चाहिए। सोऽहम् इस ओजमयी वाणी को उन्हें माँ के दूध के साथ पी जाना चाहिये। मैं वही हूँ, मैं वही हूँ। मनुष्य इसीका सतत् चिन्तन करें और ऐसा सोचनेवाले हृदय वे कार्य सम्पन्न करेंगे, जिन्हें देखकर विश्व चकित रह जावेगा।

अद्वैतवाद से लाभ

किस प्रकार वह कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है ? कोई-कोई कहते हैं कि अद्वैतवाद कार्य-रूप में नहीं लाया जा सकता अर्थात् भौतिक जगत् में उसकी शक्ति का प्रकाश अब तक

नहीं हुआ। किसी हद तक यह ठीक हो सकता है क्योंकि वेदों का कहना है कि—

"ओमित्येकाक्षरम् ब्रह्म ओमित्येकाक्षरम् परम्।"
ओमित्येकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत॥

केठोपनिषद् २। १६

"ओम् ही महान् रहस्य है, ओम् ही विशाल सम्पत्ति है, जो ओम् के रहस्य को जानता है, वह मनवांछित फल पाता है।"

इसीलिए, पहले इस ओम् के रहस्य को तो जानो कि तुम ही ओम् हो। 'तत्त्वमसि' के तत्त्व को तो समझो। ऐसा करने पर ही जो तुम चाहोगे, तुम्हें मिलेगा। यदि तुम धन-वैभव चाहते हो, तो विश्वास करो कि वह तुम्हें मिलेगा। मैं चाहे एक छोटा सा बुद-बुद होऊँ और तुम चाहे एक पहाड़ के समान ऊँची तरंग हो, पर याद रक्खो कि हमारी-तुम्हारी दोनों की ही शक्ति का आगार एक वही अनन्त-सागर परमात्मा है। उसी में से मैं एक छोटा सा बुद बुद और तुम एक ऊँची-तरङ्ग दोनों ही जितनी शक्ति चाहें ले सकते हैं। इसलिए अपने आप में विश्वास करना सीखो। अद्वैत-वाद का यही रहस्य है कि पहले अपने आप में विश्वास करना सीखो फिर किसी अन्य वस्तु में। संसार के इतिहास में तुम देखोगे कि उन जातियों ने ही उन्नति की है, जिन्होंने अपने आप में विश्वास किया है। प्रत्येक जाति के इतिहास में तुम देखोगे कि वे ही पुरुष

अद्वैतवाद का कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है?

महान् हुए और प्रभावशाली हैं, जिन्होंने अपने आप में विश्वास किया है। यहीं भारतवर्ष में एक साधारण स्थिति का अँग्रेज़ क्लर्क आया था, जिसने धनाभाव से तथा अन्य कारणों से दो वार अपने सिर में गोली मारकर आत्म-हत्या करने की चेष्टा की थी, पर जब दोनों ही वार वह असफल रहा, तब उसे विश्वास हुआ कि मैं संसार में महान् कार्य सम्पन्न करने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूँ। यही व्यक्ति आगे चलकर भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डालनेवाला प्रख्यात लार्ड क्लाइव हुआ। यदि उसने पादरियों का विश्वास कर यही कहा होता—"हे ईश्वर, मैं वहुत कमज़ोर हूँ, मैं वड़ा पापी हूँ।" तो वह कहाँ होता? एक पागलख़ाने में। इन निर्वल विचारों को सिखा-सिखाकर तुम्हारे धर्म-गुरुओं ने तुम्हें पागल वना दिया है। मैंने संसार भर में घूम कर देखा है कि इन दीनता और दुर्वलता उत्पन्न करने वाली शिक्षाओं ने मनुष्य-जाति को नष्ट कर डाला है। हमारे वच्चे ऐसे ही विचारों के साथ वढ़कर मनुष्य वनते हैं, आश्चर्य ही क्या कि वे आधे सिड़ी होते हैं।

अद्वैतवाद को यथार्थ रूप में परिणत करने का यही उपाय है।

नई शिक्षा अद्वैतवाद को ग्रहण कर जो चाहे सो करो

अपने आप में विश्वास करो और यदि तुम धन-सम्पत्ति चाहते हो, तो उसे पाने के लिए प्रयत्न करो, वह तुम्हें अवश्य मिलेगी। यदि तुम प्रतिभाशाली और मनस्वी होना चाहते हो, तो उसके लिए भी चेष्टा करो, तुम वैसे ही होगे। यदि तुम स्वतंत्रता चाहते हो, तो प्रयत्न करो, तुम देवता वनोगे।

'निर्वाण' चिदानन्द का आश्रय लो।" भूल यहीं पर होती थी। कि अद्वैतवाद का आत्मिक क्षेत्र में ही प्रयोग किया गया था, पर अब समय आ गया है, जबकि तुम्हें इसे कर्म जीवन में भी लाना है। अब वह रहस्य न रहेगा, ऋषियों के साथ वनों में, कन्दराओं में व हिमालय पर्वत में वह छिपा न रहेगा। संसार का प्रत्येक प्राणी उसे कार्यरूप में लावेगा। राजा के मन्दिर में, सन्यासी की गुफा में, गरीब की झोपड़ी में—प्रत्येक जगह उसका प्रयोग किया जा सकता है। एक भिक्षुक भी उसका प्रयोग कर सकता है, क्योंकि हमारी गीता में लिखा है—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

इस धर्म का अल्पमात्र भी बड़े से बड़े भय से बचाता है। इसलिए चाहे तुम स्त्री हो, चाहे शूद्र हो, चाहे अन्य कुछ, तुम तनिक भी भय न करो, क्योंकि श्रीकृष्णजी ने कहा है कि यह धर्म इतना विशाल है कि थोड़ा सा करने पर भी बहुत सा फल देता है। इसलिए हे आर्य सन्तानो, आलस्य को त्याग दो। जागो और उठ खड़े हो और जब तक लक्ष्य-सिद्धि न हो आगे बढ़ते ही चलो। अद्वैतवाद को कार्य-रूप में लाने का यही समय है। आओ, उसे आकाश से पृथ्वी पर उतारें, यही विधि का विधान है। देखो, तुम्हारे जन्म-दाता महर्षि तुमसे पुकार कर कह रहे हैं कि "बच्चो अब रुक जाओ। अपनी शिक्षा और उपदेशों को नीचे उतरने दो और समाज की नसों में भर जाने दो। उन्हें प्रत्येक प्राणी के जीवन का भाग तथा समाज का सार्वजनिक

धन बनने दो। मनुष्यों की धमनियों में रक्त के साथ उन्हें बहने दो।"

सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा ; पर पश्चिम के लोगों ने वेदान्त को तुमसे अधिक कार्य-रूप में परिणत किया है। न्यूयार्क के
समुद्र-तट पर खड़ा होकर मैं देखता था कि किस
पाश्चात्य जातियों प्रकार विविध देशों से पद-दलित और आशाहीन
ने हम लोगों की परदेशी वहाँ पर आते हैं। उनके पहनने के
अपेक्षा अधिक कपड़े फटे हुए हैं, एक छोटी सी मैली गठरी ही
अद्वैतवाद को उनकी सारी सम्पत्ति है, किसी मनुष्य की
अपने जीवन में आँखों से आँखें मिला कर वे देख नहीं सकते।
परिणत किया है। यदि वे किसी पुलिसवाले को देखते हैं, तो भय
से हटकर रास्ते के दूसरी ओर हो जाते हैं
और छः महीने में ही वे अच्छी पोशाक पहिने, सबकी दृष्टि से दृष्टि मिलाये, अकड़ते हुए चलते दिखाई देते हैं। और इस अद्भुत काया-पलट का कारण क्या है? मान लो यह पुरुष आर्मीनिया या अन्यत्र कहीं से आया है, जहाँ पर उसकी तनिक भी चिन्ता न कर सब उसे ठोकरें मारते थे, जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति उससे यही कहता कि तू ग़ुलाम पैदा हुआ है और आ-जीवन ग़ुलाम ही रहेगा, जहाँ वह यदि तनिक भी हिलने की चेष्टा करता, तो उस पर सहस्रों पदाघात होते। वहाँ प्रत्येक वस्तु उससे यही कहती—"ग़ुलाम, तू ग़ुलाम है, वहीं रह। निराशाहीन के अन्धकार में तू पैदा हुआ था, उसी में सारा

जीवन बिताओ।" वहाँ का वायु-मण्डल भी गूँज-गूँज कर प्रतिध्वनि करता—"तेरे लिए कोई आशा नहीं, तू ग़ुलामी में ही सारा जीवन काट।" वहाँ पर सबल ने उसे पीस डाला था और जब वह न्यूयार्क की विस्तृत सड़कों में आया, तो उसने अच्छी पोशाक पहिने हुए एक सभ्य पुरुष को अपने से हाथ मिलाते पाया। अच्छे और बुरे कपड़ों ने कोई अन्तर न डाला। आगे चलकर उसे एक भोजनालय मिला जहाँ पर एक मेज़ पर बैठे हुए कई सभ्य पुरुष भोजन कर रहे थे; उसी मेज़ पर बैठकर भोजन करने के लिए उससे भी कहा गया। वह चारों ओर आया गया और उसे एक नवीन जीवन का अनुभव हुआ। उसने देखा कि ऐसी भी जगह है जहाँ वह पाँच मनुष्यों में एक मनुष्य है। शायद वह वाशिंगटन भी गया और वहाँ संयुक्त-राज्य के सभापति से हाथ मिलाया। वहाँ पर उसने फटे कपड़े पहिने, सुदूरस्थ गाँवों से किसानों को भी आते हुए देखा, जो कि सभापति से हाथ मिलाते थे। अब माया का पर्दा हट गया। ग़ुलामी और निर्बलता के कारण वह भूल गया था कि मैं ब्रह्म हूँ। एक बार फिर जागकर उसने देखा कि संसार के अन्य मनुष्यों की भाँति वह भी एक मनुष्य है।

हमारे ही इस देश में, वेदान्त के इस पुण्य जन्म-स्थान में ही, शताब्दियों से हमारा जन-समुदाय इस अधोगति को पहुँचा हुआ है। उनके साथ बैठना भी पाप है! 'आशा-हीन तुम पैदा हुए थे, आशाहीन ही रहो,—परिणाम यह होता है कि वे दिन-पर-दिन

गिरते ही जाते हैं, गिरते ही जाते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य की जो पतित-से-पतित अवस्था हो सकती है; वे आज उस तक पहुँच गए हैं। संसार में ऐसा कौनसा देश है, जहाँ मनुष्य को गाय भैंस आदि पशुओं के साथ सोना पड़ता है? और इसके लिए अज्ञानियों की भाँति दूसरों को दोष न दो।

अपनी दुर्दशा के लिये हमीं उत्तर-दायी हैं।

मूर्ख लोगों ने जो भूलें की हैं, उसी भ्रम में तुम भी न पड़ो। जहाँ कार्य है, वहीं कारण भी है। दोषी हमीं हैं। दृढ़तापूर्वक खड़े होकर दोषों को अपने ही सिर पर लो। दूसरों के ऊपर कीचड़ न फेंकते फिरो। उन तमाम दोषों के, जिनके कारण तुम दुख पाते हो, एक मात्र उत्तरदायी तुम्हीं हो।

इसलिये हे लाहौर के नवयुवको, इस बात को भली-भाँति समझ लो कि सारे पैतृक और जातीय पापों का भार तुम्हारे ही कन्धों पर है। इसे दूर किये बिना तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता। हजारों विद्यालय खोल लो, लेकिन तुम चाहे जितनी सभा-सोसाइटियों और कान्फ्रेंसें कर डालो, तुम्हारा तब तक भला न होगा जब तक कि तुम्हारे पास वह हृदय, वह प्रेम, वह सहानुभूति न होगी, जो कि दूसरे के दुख-सुख को अपना समझती है। जब तक भारतवर्ष में एक बार फिर बुद्ध का हृदय नहीं आता, जब तक योगेश्वर कृष्ण के शब्द कार्य-रूप में परिणत नहीं किये जाते, तब तक हमारे लिये कोई

उद्धार का उपाय प्रेम और सहानु-भूति है।

आशा नहीं। तुम लोग यूरोप-वासियों की नक़ल करते जाओ; पर सुनो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ, जो कि मेरी आँखों देखी हुई एक सच्ची घटना है। यहाँ से कुछ यूरेशियन कुछ बर्मा-निवासियों को लण्डन ले गये और वहाँ उन्हें जनता को दिखाकर पैसे वसूल किये। इसके बाद उन्होंने उन्हें यूरोप में ले जाकर मरने-जीने के के लिये छोड़ दिया। वे बिचारे कोई यूरोप की भाषा भी न जानते थे; पर आस्ट्रिया के अंग्रेज़ राज-दूत ने उन्हें लण्डन भिजवा दिया। लण्डन में भी वे किसी को न जानने के कारण असहाय थे। वहाँ पर एक अंग्रेज़ महिला को उनका पता लगा। वह उन्हें अपने घर ले गई तथा पहनने के लिये अपने कपड़े और सोने के लिये अपने बिस्तर दिये। फिर उसने उनकी दशा की ख़बर अख़बारों में भेज दी। दूसरे ही दिन सारी जाति मानों सोते से जाग पड़ी। बहुत सा पैसा इकट्ठा हो गया और वे लोग बर्मा भेज दिये गये। इस प्रकार की सहानुभूति पर ही उनकी सामाजिक व राजनैतिक संस्थाएँ और व्यवस्थाएँ स्थित हैं।

उनका कम से कम अपने देशवासियों के लिये अटल प्रेम उनके सभी कार्यों का मूल है। उन्हें चाहे दुनिया से प्रेम न हो, सब लोग चाहे उनके दुश्मन ही हों, पर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्वजाति के लिये उनमें प्रगाढ़ प्रेम तथा द्वार पर आये हुए परदेशी के लिये दया और न्याय है। यह मेरी कृतघ्नता होगी, यदि मैं तुम्हें न बताऊँगा कि किस प्रकार पश्चिम

के प्रत्येक देश में मेरा बड़े ही आदर व सम्मान के साथ स्वागत किया गया था। यहाँ वह हृदय कहाँ है, जिस पर तुम राष्ट्र का प्रासाद खड़ा करोगे? हम लोग एक छोटी सी कम्पनी बनाकर कार्य शुरू नहीं करते कि झट एक दूसरे को धोखा देने लग जाते हैं और शीघ्र सारा मामला ठप हो जाता है। तुम कहते हो कि हम उनका अनुकरण करेंगे, उन्हीं की भाँति अपना भी राष्ट्र बनावेंगे; पर उनकी सी यहाँ नींवें कहाँ हैं? यहाँ पर तो बालू ही बालू है और इसलिए जो इमारत खड़ी भी करते हो, वह तुरन्त ही घहराकर बैठ जाती है।

इसलिए हे लाहौर के नवयुवको, एक बार फिर उसी अद्वैत के अद्वितीय झण्डे को उठाओ। क्योंकि और किसी उपाय से तुम्हारे भीतर वह अपूर्व प्रेम उत्पन्न हो न होगा।

हमारी जातीयता की प्रतिष्ठा के लिये प्रेम और सहानुभूति का अभाव

जब तक तुम सब में एक ही परमात्मा को समान रूप से प्रकट होते न देखोगे, तब तक तुम्हारे हृदय में सच्चा प्रेम उत्पन्न न होगा। उस प्रेम के झण्डे को फहरा दो।" जागो, और उठ खड़े हो और जब तक लक्ष्य तक नहीं पहुँचते, तब तक निश्चिन्त न रहो। उठो, उठो, एक बार फिर उठो; क्योंकि बिना त्याग के कुछ नहीं हो सकता। यदि तुम दूसरों की सहायता करना चाहते हो, तो अपनी चिन्ता करना छोड़ दो। जैसा कि ईसाई कहते हैं, तुम एक साथ ही ईश्वर और शैतान दोनों की सेवा नहीं कर सकते। तुम्हारे

जन्मदाता तपस्वी पुरुषों ने बड़े-बड़े काम करने के लिए संसार त्याग दिया था। आज भी ऐसे पुरुष दुनियाँ में हैं, जिन्होंने मुक्ति पाने के लिए संसार को छोड़ दिया है तुम सब मोह त्याग दो, अपनी मुक्ति की भी चिन्ता छोड़ दो और जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम लोग सदा लम्बी-चौड़ी हाँका करते हो, यह देखो वेदान्त का कार्य-क्रम। अपने इस छोटे से जीवन का उत्सर्ग कर दो। जो यदि हमारी जाति जीवित रहेगी! हमारे तुम्हारे से सहस्रों के भी भूख से प्राण गँवा देने से क्या होगा।

हमारी जाति डूबी जा रही है। उन असंख्य भारतवासियों के अभिशाप हम लोगों के सिर पर हैं, जिन्हें तुमने निर्मल जल
वाली नदी के होते हुये भी पीने के लिये पोखरे
देश के जन साधा- का गन्दा जल दिया है, जिन्हें भोजन के ढेर
रण के लिये लगे रहने पर भी तुमने भूखों मारा है, जिन्हें
प्राणों की बाजी तुमने अद्वैत का उपदेश दिया है, पर जिनसे
लगा दो। तुमने हृदय से घृणा की है, जिनके लिए तुमने
लोकाचार के अनोखे सिद्धान्तों का आविष्कार
किया है, जिनसे तुमने केवल सिद्धान्तरूप से कहा है कि हम सब में एक ही ईश्वर है, पर जिस सिद्धान्त को तुमने कभी कार्य-रूप में लाने की चेष्टा नहीं की—तुमने सदा यही कहा है—"मित्रो, यह सब विचार अपने हृदय में ही रक्खो, उन्हें कार्य-रूप में कदापि न लाओ।" अरे इस काले धब्बे को मिटा दो।

"जागो, और उठ खड़े हो।" यदि यह छोटा सा जीवन जाता है, तो जाने दो। संसार के प्रत्येक प्राणी को मरना है, पापी को भी, पुण्यात्मा को भी, अमीर को भी, ग़रीब को भी। इसलिये जागो, उठो, बिलकुल निश्छल बनो। भारत में बेढब धोखेबाज़ी आ गई है। हमें वह चरित्र-बल और दृढ़ता चाहिए, जो मनुष्य को मृत्यु के समान अकड़ कर पकड़ ले।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा, यथेष्टम्,
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

"नीतिज्ञ चाहे निन्दा करें, चाहे स्तुति करें, लक्ष्मी आवे, चाहे जाय, मौत आज आती हो, तो आज आजावे और सौ बरस बाद आती हो, तो तब आवे, धैर्यशाली पुरुष किसी की भी चिन्ता न कर न्याय-पथ से एक पग भी विचलित नहीं होते।" जागो, उठ खड़े हो। समय बीता जा रहा है। और हमारी सारी शक्ति बातें करने में ही खर्च हो रही है। उठो, जागो, मामूली मामूली बातों और छोटे छोटे मत मतान्तर को लेकर विवाद करना छोड़ दो। तुम्हारे सामने जो बड़ा भारी कार्य पड़ा हुआ है, लाखों आदमी डूब रहे हैं, उनका उद्धार करो।

जब मुसलमान भारतवर्ष में पहिले-पहल आए थे तब आज से कितने अधिक हिन्दू थे, आज कितने कम हैं। इसके लिये कुछ किया न गया तो हिन्दू दिन पर दिन घटते ही जावेंगे, यहाँ

तक कि उनका नाम-निशान भी न रहेगा। उनका नाम-निशान रहे अथवा न रहे, पर उनके साथ वेदान्त के उन अनुपम विचारों का भी लोप हो जायगा, जिनके कि हिन्दू अपने सारे दोषों और अन्धविश्वासों के होते हुए भी एक मात्र प्रतिनिधि हैं। उनके साथ इस आत्म-ज्ञान के अमूल्य-मणि अद्वैत का भी लोप हो जायगा। इसलिए जागो और उठ खड़े हो। संसार के आत्म-ज्ञान की रक्षा के लिए अपने हाथ फैला दो। और सबसे पहले अपने देश की भलाई के लिये इस तत्व को कार्य रूप में परिणत करो। हमें धर्म की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी अद्वैत को कार्य-रूप में लाने की। पहले रोटी की व्यवस्था करनी होगी तब धर्म की। जब तुम्हारे देशवासी भूखों मर रहे हैं, तब हम उन्हें धर्म उपदेश दे रहे हैं। भूख की अग्नि को धर्म कभी शान्त नहीं कर सकता। हम में दो बड़े भारी दोष हैं—एक हमारी निर्बलता, दूसरी हमारी ईर्ष्या व घृणा, हमारे सूखे हृदय। तुम लाख सिद्धान्त मानो, लाख धर्म चलाओ; पर जब तक तुम्हारे हृदय में सच्चा प्रेम, सच्ची सहानुभूति नहीं है, तब तक इन सबसे कुछ न होगा। अपने निर्धन देश-भाइयों से उसी भाँति प्रेम करना सीखो, जिस प्रकार तुम्हारे वेद तुम्हें सिखाते हैं। इस बात का हृदय में अनुभव करो कि गरीब और अमीर, पापी और पुण्यात्मा, सब एक ही अनन्त ब्रह्म के विभिन्न भाग हैं।

उपसंहार

सज्जनो मैंने आप लोगों के सामने अद्वैतवाद के कई मुख्य मुख्य बातों को रखने का प्रयत्न किया है और अब उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का समय आ गया है, सिर्फ़ इसी देश में नहीं, बल्कि सर्वत्र ! आधुनिक विज्ञान का लोहे का मुद्गर सब स्थानों के द्वैतवादात्मक सभी धर्मों की काँच की बनी दीवार को चूर्ण करके नष्ट भ्रष्ट कर रहा है। केवल यहीं पर द्वैतवादी शास्त्रीय श्लोकों का खींच खांच कर अर्थ करने की चेष्टा करते हैं, 'रबर की तरह जहाँ तक हो सकता है, खींचते हैं'। केवल यहीं पर आत्म रक्षा के लिये अन्धकार के कोने में छिपाने की कोशिश करते हैं, सो बात नहीं योरप और अमेरिका में भी यह कोशिश और भी ज्यादा हो रही है। वहाँ पर भारत से जाकर यह तत्व फैलना चाहिये। इसके पहले ही वह चला गया है, उसका विस्तार दिन दिन और भी करते जाना चाहिये। पाश्चात्य सभ्य जगत की रक्षा के लिये इसकी विशेष आवश्यकता है। क्योंकि पाश्चात्य देशों में वहाँ के प्राचीन भावों की जगह पर एक नया भाव, कांचन पूजा, प्रचलित हो रही है। इस आधुनिक धर्म अर्थात् एक दूसरे से बढ़ जाना और कांचन पूजा की अपेक्षा वह पुराना धर्म ही अच्छा था। कोई जाति कितना ही प्रबल क्यों न हो जाय, कभी इस तरह की बुनियाद पर नहीं खड़ी हो सकती। संसार का इतिहास हमें बतलाता है कि जो भी इस तरह की बुनियाद पर अपने समाज को क़ायम करने गया है, उसी का नाश हुआ है। भारत में कांचन पूजा का रोग

घुसने न पाये, इसकी ओर हम लोगों को विशेष ध्यान रखना होगा। इसलिये सब में इस अद्वैतवाद का प्रचार करो। जिससे धर्म आधुनिक विज्ञान के प्रबल आघात से अछूता बचा रहे। केवल यही नहीं, आपको दूसरों की भी सहायता करनी होगी। आपके विचार योरप अमेरिका का उद्धार करेंगे। लेकिन सब से पहले आपको याद दिलाता हूँ कि यहीं पर असली काम है और उस कार्य का पहला अंग है दिन दिन की बढ़ती हुई गरीबी और अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर देशवासियों को उन्नत बनाना। उनकी भलाई के लिये, उनकी सहायता के लिये अपने हाथ फैला दो और भगवान की इस वाणी को याद रखो :—

"इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥"

गीता ५—१९

जिसका मन इस साम्यभाव में स्थित है, उन्होंने इसी जीवन में संसार को जीत लिया। जिस कारण से ब्रह्म निर्दोष और सम भाव से पूर्ण है, इसी कारण वे ब्रह्म में स्थित हैं।

भारतीय जीवन पर वेदांत का प्रभाव

हमारी जाति और धर्म को बतलाने के लिये एक शब्द का खूब प्रचार हो गया है। मेरा अभिप्राय 'हिन्दू' शब्द से है।

कौन हिन्दू है

वेदान्त धर्म को समझाने के लिये इस शब्द का अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्राचीन पारसी सिन्धु नद को हिन्दु कहा करते थे। संस्कृत भाषा में जहाँ पर 'स' होता है, प्राचीन पारसी भाषा में वह 'ह' हो जाता है। इस प्रकार सिन्धु से हिन्दु हुआ। और आप सभी लोग जानते हैं कि ग्रीक लोक ह का उच्चारण नहीं कर सकते; इसलिये उन्होंने 'ह' को एक बारगी उड़ा दिया; इस तरह हम लोगों का इण्डियन नाम पड़ा। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीनकाल में इस शब्द का चाहे जो कुछ अर्थ हो, उसके कहने से सिन्धु नदी के पार रहने वाला का बोध हो या जिसका बोध हो, वर्तमान काल में उसकी कोई सार्थकता नहीं। क्योंकि इस समय सिन्धु नदी के पार रहने वाले सब लोग एक मत के मानने वाले नहीं रहे। यहाँ पर इस समय हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और अनेकों बौद्ध और जैन भी वास करते हैं। हिन्दू शब्द के व्युत्पत्ति के अनुसार इन सब को हिन्दू कहना चाहिये, किन्तु धर्म के हिसाब के इन सब को हिन्दू कहने से नहीं

चल सकता। और हम लोगों का धर्म अनेक मत-मतान्तरों, भिन्न-भिन्न भावों का समष्टि रूप है, ये सब एक साथ रहे हैं। किन्तु इनका एक साधारण नाम नहीं रहा है और न इनकी जमात ही है। इसी कारण से हम लोगों के धर्म का एक साधारण या सर्वसम्मत नाम रखना बड़ा ही कठिन है। जान पड़ता है कि केवल इसी एक बात पर हमारे सभी संप्रदाय एक मत हैं कि हम सब लोग वेदों पर विश्वास रखने वाले हैं। यह निश्चित रूप से जान पड़ता है कि जो मनुष्य वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करता, वह अपने को हिन्दू कहने का अधिकारी नहीं।

आप सभी लोग जानते हैं कि वेद के दो भाग हैं, कर्मकांड और ज्ञान काण्ड। कर्मकांड में भिन्न-भिन्न प्रकार के याग-यज्ञ और उनकी पद्धति दी हुई है—उनमें अधिकांश आजकल प्रचलित नहीं हैं। ज्ञानकांड में वेदों के आध्यात्मिक उपदेश लिखे हुए हैं, वे उपनिषद् अथवा वेदान्त कहलाते हैं। और द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी वा अद्वैतवादी सभी आचार्य और दार्शनिक इन्हें ही सब से बढ़कर प्रामाणिक मानते आये हैं। भारतीय सभी दर्शनों और सभी सम्प्रदायों को दिखलाना पड़ता है कि उनका दर्शन या सम्प्रदाय उपनिषदों की भित्ति के ऊपर अवलम्बित है। अगर कोई दिखला नहीं सकता, तो वह दर्शन या संप्रदाय त्याज्य समझा जायगा। इसलिये वर्तमान काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष के हिन्दुओं को यदि किसी नाम से परिचय दिया जा सकता है, तो

हिन्दू और वेदान्तिक

साथ उत्पन्न हुए थे अथवा (यदि मुझे इस तरह की भाषा प्रयोग करने में कोई आपत्ति न करे) वह कभी बनाये नहीं गये, वे चिर काल से सृष्टिकर्त्ता के मन में वर्तमान थे। वेदान्त शब्द से मैं उसी अनादि अनन्त ज्ञान कोष को ही लक्ष्य करता हूँ। भारत के द्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत होंगे। संभवतः हम लोग बौद्ध धर्म-यही क्यों जैन धर्म के भी अंश विशेष को ग्रहण कर सकते हैं, यदि वे धर्म वाले कृपापूर्वक हम में मिलने को तैयार हों। हम लोगों का हृदय तो काफ़ी विशाल है, हम लोग तो उन्हें भी ग्रहण करने को अनायास ही तैयार हैं क्योंकि अच्छी तरह खोज बीन करने पर आप देखेंगे कि बौद्ध धर्म का सार भाग इन उपनिषदों से ही लिया गया है। यही क्यों बौद्ध धर्म की नीति-अद्भुत और महान नीति तत्व—किसी न किसी उपनिषद में अविकल रूप-ज्यों के त्यों—पायी जाती है। इसी प्रकार जैन धर्म की अच्छी अच्छी बातें उपनिषदों में पाई हैं, केवल उनके शब्दों में हेरफेर है। बाद में भारत में धार्मिक विचारों में जो जो परिवर्तन हुए हैं, उनके बीज भी उपनिषदों में दिखलाई पड़ते हैं। समय समय पर बिना कारण दिखलाये उपनिषदों पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का 'आदर्श' नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अच्छी तरह से अध्ययन किया है वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल ठीक नहीं। प्रत्येक उपनिषद के अनुसंधान करने पर भक्ति की काफ़ी सामग्री मिलती है। तोभी अन्यान्य अनेक

चल सकता। और हम लोगों का धर्म अनेक मत-मतान्तरों, भिन्न-भिन्न भावों का समष्टि रूप है, ये सब एक साथ रहे हैं। किन्तु इनका एक साधारण नाम नहीं रहा है और न इनकी जनान ही है। इसी कारण से हम लोगों के धर्म का एक साधारण या सर्वसम्मत नाम रखना बड़ा ही कठिन है। जान पड़ता है कि केवल इसी एक बात पर हमारे सभी संप्रदाय एक मत हैं कि हम सब लोग वेदों पर विश्वास रखने वाले हैं। यह निश्चित रूप से जान पड़ता है कि जो मनुष्य वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करता, वह अपने को हिन्दू कहने का अधिकारी नहीं।

आप सभी लोग जानते हैं कि वेद के दो भाग हैं, कर्मकांड और ज्ञान काण्ड। कर्मकांड में भिन्न-भिन्न प्रकार के याग-यज्ञ और उनकी पद्धति दी हुई है—इनमें अधिकांश आजकल प्रचलित नहीं हैं। ज्ञानकांड में वेदों के आध्यात्मिक उपदेश लिखे हुए हैं, वे उपनिषद् अथवा वेदान्त कहलाते हैं। और द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी सभी आचार्य और दार्शनिक इन्हें ही सब से बढ़कर प्रामाणिक मानते आये हैं। भारतीय सभी दर्शनों और सभी सम्प्रदायों को दिखलाना पड़ता है कि उनका दर्शन या सम्प्रदाय उपनिषदों की भित्ति के ऊपर अवलम्बित है। अगर कोई दिखला नहीं सकता, तो वह दर्शन या संप्रदाय त्याज्य समझा जायगा। इसलिये वर्तमान काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष के हिन्दुओं को यदि किसी नाम से परिचय दिया जा सकता है, तो

हिन्दू और वेदान्तिक

साथ उत्पन्न हुए थे अथवा (यदि मुझे इस तरह की भाषा प्रयोग करने में कोई आपत्ति न करे) वह कभी बनाये नहीं गये, वे चिर काल से सृष्टिकर्त्ता के मन में वर्तमान थे। वेदान्त शब्द से मैं उसी अनादि अनन्त ज्ञान कोष का ही लक्ष्य करता हूँ। भारत के द्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत होंगे। संभवतः हम लोग बौद्ध धर्म-यही क्यों जैन धर्म के भी अंश विशेष का ग्रहण कर सकते हैं, यदि वे धर्म वाले कृपापूर्वक हम में मिलने को तैयार हों। हम लोगों का हृदय तो काफ़ी विशाल है, हम लोग तो उन्हें भी ग्रहण करने को अनायास ही तैयार हैं क्योंकि अच्छी तरह खोज बीन करने पर आप देखेंगे कि बौद्ध धर्म का सार भाग इन उपनिषदों से ही लिया गया है। यही क्यों बौद्ध धर्म की नीति-अद्भुत और महान नीति तत्त्व—किसी न किसी उपनिषद् में अविकल रूप-ज्यों के त्यों—पायी जाती है। इसी प्रकार जैन धर्म की अच्छी अच्छी बातें उपनिषदों में पाई हैं, केवल उनके शब्दों में हेरफेर है। बाद में भारत में धार्मिक विचारों में जो जो परिवर्तन हुए हैं, उनके बीज भी उपनिषदों में दिखलाई पड़ते हैं। समय समय पर बिना कारण दिखलाये उपनिषदों पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का 'आदर्श' नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अच्छी तरह से अध्ययन किया है वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल ठीक नहीं। प्रत्येक उपनिषद् के अनुसंधान करने पर भक्ति की काफ़ी सामग्री मिलती है। तोभी अन्यान्य अनेक

विषयों ने आगे चलकर पुराणों और स्मृतियों में, विशेष रूप में परिणत हो, फल फूल से सुशोभित वृक्षाकार धारण किया है। उपनिषदों में वे बीज रूप में वर्तमान हैं। उपनिषदों में वे मानो चित्र के स्केच के रूप में (कंकाल के रूप में) वर्तमान हैं। किसी न किसी पुराण में उन चित्रों को परिस्फुटित किया गया है, कंकाल में मांस और रुधिर संयुक्त किया गया है। किन्तु ऐसा कोई सुन्दर भारतीय आदर्श नहीं जिसका बीज सब भावों से परिपूर्ण उपनिषदों में न पाया जाय। उपनिषदों से अनभिज्ञ बहुत से लोगों ने इस बात के प्रमाणित करने की उपहासास्पद चेष्टा की है कि भक्तिवाद विदेश से आया है। परन्तु आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि उनके प्रयत्न बिल्कुल व्यर्थ हुए हैं। भक्ति के लिये उपासना, प्रेम आदि जो कुछ आवश्यक साधन हैं, वे सभी उपनिषदों को कौन कहे संहिता भाग तक में वर्तमान है। संहिता भाग में स्थान स्थान पर भय से उत्पन्न धर्म का चिन्ह पाया जाता है। संहिता भाग में स्थान स्थान पर देखा जाता है कि उपासक वरुण या अन्य किसी देवता के सामने भय से काँप रहा है। स्थान स्थान पर दिखलाई पड़ता है वह अपने को पापी समझ कर अत्यन्त दुखी हो रहा है, किन्तु उपनिषदों में इन सब बातों के वर्णन करने का स्थान नहीं है। उपनिषदों में भय का धर्म नहीं, उपनिषदों का धर्म प्रेम का है, ज्ञान का है।

ये उपनिषद ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी तरह तरह से व्याख्या की गई है। और मैं आप लोगों से पहले ही कह चुका हूँ कि बाद

अगर ऐसा न होता तो वह इतने दिन तक स्थिर नहीं रहता।

वेदों की व्याख्या करने में भाष्यकारों में मतभेद

हमारे भाष्यकारों के भाष्यों की आलोचना करते समय एक और गड़बड़ी उपस्थित होती है। अद्वैतवादी भाष्यकार जिस समय अद्वैतवाद से सम्बन्ध रखने वाले वेद के अंशों की व्याख्या करते हैं, उस समय वे उसका सीधा-सादा अर्थ करते हैं। लेकिन वे ही जब द्वैतवादी अंशों की व्याख्या करते हैं उस समय उनका शब्दार्थ करके उनके अद्भुत अर्थ करते हैं। भाष्यकारों में अपने मन का अर्थ करने के लिये अजा (जन्मरहित) शब्द का अर्थ बकरी किया है—कितना परिवर्तन है। द्वैतवादी भाष्यकारों ने ऐसा हो, इससे भी भद्दे ढंग पर, श्रुतियों की व्याख्या की है। जहाँ जहाँ पर उन्होंने द्वैत पर श्रुति पाई है, वहाँ वहाँ पर तो ठीक व्याख्या की है, किन्तु जहाँ पर अद्वैतवाद की बातें आईहैं, वहीं पर उन सब अंशों की मनमानी व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है और संस्कृत का शब्दशास्त्र इतना जटिल है कि एक शब्द के अर्थ को लेकर युग युगान्तर तक तर्क चल सकता है। कोई पंडित यदि चाहे तो वह किसी व्यक्ति के प्रलाप को भी युक्ति बल से और शास्त्र और व्याकरण के नियम उद्धृत करके शुद्ध संस्कृत बना सकता है। उपनिषदों के समझने में यही विघ्न बाधाएँ हैं। ईश्वर की कृपा से मैंने एक ऐसे व्यक्ति का सहवास पाया था जो एक

विषयों ने आगे चलकर पुराणों और स्मृतियों में, विशेष रूप में परिणत हो, फल फूल से सुशोभित वृक्षाकार धारण किया है। उपनिषदों में वे बीज रूप में वर्तमान हैं। उपनिषदों में वे मानो चित्र के स्केच के रूप में (कंकाल के रूप में) वर्तमान हैं। किसी न किसी पुराण में इन चित्रों को परिस्फुटित किया गया है, कंकाल में मांस और रुधिर संयुक्त किया गया है। किन्तु ऐसा कोई सुन्दर भारतीय आदर्श नहीं जिसका बीज सब भावों से परिपूर्ण उपनिषदों में न पाया जाय। उपनिषदों से अनभिज्ञ बहुत से लोगों ने इस बात के प्रमाणित करने की उपहासास्पद चेष्टा की है कि भक्तिवाद विदेश से आया है। परन्तु आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि उनके प्रयत्न बिल्कुल व्यर्थ हुए हैं। भक्ति के लिये उपासना, प्रेम आदि जो कुछ आवश्यक साधन हैं, वे सभी उपनिषदों की कौन कहे संहिता भाग तक में वर्तमान हैं। संहिता भाग में स्थान स्थान पर भय से उत्पन्न धर्म का चिन्ह पाया जाता है। संहिता भाग में स्थान स्थान पर देखा जाता है कि उपासक वरुण या अन्य किसी देवता के सामने भय से काँप रहा है। स्थान स्थान पर दिखलाई पड़ता है वह अपने को पापी समझ कर अत्यन्त दुखी हो रहा है, किन्तु उपनिषदों में इन सब बातों के वर्णन करने का स्थान नहीं है। उपनिषदों में भय का धर्म नहीं, उपनिषदों का धर्म प्रेम का है, ज्ञान का है।

ये उपनिषद ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी तरह तरह से व्याख्या की गई है। और मैं आप लोगों से पहले ही कह चुका हूँ कि बाद

अगर ऐसा न होता तो वह इतने दिन तक स्थिर नहीं रहता।

हमारे भाष्यकारों के भाष्यों की आलोचना करते समय एक और गड़बड़ी उपस्थित होती है। अद्वैतवादी भाष्यकार जिस समय अद्वैतवाद से सम्बन्ध रखने वाले वेद के अंशों की व्याख्या करते हैं, उस समय वे उसका सीधा-सादा अर्थ करते हैं। लेकिन वे ही जब द्वैतवादी अंशों की व्याख्या करते हैं उस समय उनका शब्दार्थ करके उनके अद्भुत अर्थ करते हैं। भाष्यकारों में अपने मन का अर्थ करने के लिये अजा (जन्मरहित) शब्द का अर्थ बकरी किया है—कितना परिवर्तन है। द्वैतवादी भाष्यकारों ने ऐसा ही, इससे भी भद्दे ढंग पर, श्रुतियों की व्याख्या की है। जहाँ जहाँ पर उन्होंने द्वैत पर श्रुति पाई है, वहाँ वहाँ पर तो ठीक व्याख्या की है, किन्तु जहाँ पर अद्वैतवाद की बातें आईहैं, वहीं पर उन सब अंशों की मनमानी व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है और संस्कृत का शब्दशास्त्र इतना जटिल है कि एक शब्द के अर्थ को लेकर युग युगान्तर तक तर्क चल सकता है। कोई पंडित यदि चाहे तो वह किसी व्यक्ति के प्रलाप को भी युक्ति बल से और शास्त्र और व्याकरण के नियम उद्धृत करके शुद्ध संस्कृत बना सकता है। उपनिषदों के समझने में यही विघ्न बाधाएँ हैं। ईश्वर की कृपा से मैंने एक ऐसे व्यक्ति का सहवास पाया था जो एक

वेदों की व्याख्या करने में भाष्यकारों में मतभेद

ओर तो बड़े भारी द्वैतवादी थे, दूसरी ओर घोर अद्वैतवादी भी थे, जो एक ओर बड़े भारी भक्त थे, दूसरी ओर परम ज्ञानी थे। इन्हीं महात्मा के शिक्षा द्वारा पहले पहल उपनिषद् और दूसरे शास्त्रों को केवल आँख मूँद कर भाष्यकारों का अनुसरण न कर स्वाधीनतापूर्वक अच्छी तरह समझा है। और इस विषय में मैंने जो कुछ थोड़ा बहुत अनुसंधान किया है, उससे मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये शास्त्र वाक्य परस्पर विरोधी नहीं हैं। इसलिये हमारे शास्त्रों की विकृत व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं। श्रुतियों के वाक्य बहुत सुन्दर हैं, वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, उनमें अपूर्व सामञ्जस्य है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपान-स्वरूप है। मैंने इन उपनिषदों में एक विषय अच्छी तरह से देखा है, पहले द्वैतभाव की बातें, उपासना आदि आरंभ हुई है, अन्त में अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्वास से वह समाप्त हुआ है।

मेरे आचार्य श्री रामकृष्णदेव का मत-समन्वय

इसलिये इस समय इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश से मैं देख रहा हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादी इन दोनों को आपस में विवाद करने का कोई कारण नहीं। दोनों का जातीय जीवन में विशेष स्थान है। द्वैतवादी रहेंगे ही, अद्वैतवादियों की तरह द्वैतवादियों का भी जातीय जीवन में विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता; एक दूसरे का

द्वैत और अद्वैतवाद का समन्वय

संसार में और कहाँ पर सम्पूर्ण जगत के सम्पूर्ण दार्शनिक भाव का पूर्ण चित्र पायेंगे ? हिन्दू जाति की समग्र चिन्ता धारा का, मनुष्य जाति की मुक्ति कामना की सारी कल्पना का सारांश जैसी विचित्र भाषा में चित्रित हुआ है, जैसे अद्भुत रूप का वर्णन किया गया है, वैसा और कहाँ पर पाओगे ?

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वन्यत्नअन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥
यदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम्।
तदा विद्वान् पुण्य पापेः विधूय निरंजनः परमं साम्य मुपैति ॥३॥

—मुण्डकोपनिषद-३-१

एक वृक्ष पर सुन्दर पाँख वाली दो सुन्दर चिड़ियाँ बैठी हैं, उन दोनों में परस्पर मैत्री भाव है! उनमें से एक उस वृक्ष का फल खाती है, दूसरा फल न खाकर चुपचाप शान्त भाव से बैठी है। नीचे की शाखा पर बैठी चिड़िया कभी मीठा, कभी कड़वा फल खाती है, एवं इसी कारण कभी सुखी होती है, कभी दुखी, लेकिन ऊपर की शाखा वाली चिड़िया स्थिर गम्भीर भाव से बैठी है, वह अच्छा बुरा कोई फल नहीं खाती—वह सुख दुःख दोनों से उदासीन है, अपने में ही मस्त है। ये पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन में स्वादिष्ट और कड़वे फल खाता है, वह अर्थ की खोज में व्यस्त है—वह इन्द्रियों के

ओर तो बड़े भारी द्वैतवादी थे, दूसरी ओर घोर अद्वैतवादी भी थे; जो एक ओर बड़े भारी भक्त थे, दूसरी ओर परम ज्ञानी थे। इन्हीं महात्मा के शिक्षा द्वारा पहले पहल उपनिषद् और दूसरे शास्त्रों को केवल आँख मूँद कर भाष्यकारों का अनुसरण न कर स्वाधीनतापूर्वक अच्छी तरह समझा है। और इस विषय में मैंने जो कुछ थोड़ा बहुत अनुसंधान किया है, उससे मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये शास्त्र वाक्य परस्पर विरोधी नहीं हैं। इसलिये हमारे शास्त्रों की विकृत व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं। श्रुतियों के वाक्य बहुत सुन्दर हैं, वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, उनमें अपूर्व सामञ्जस्य है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपान-स्वरूप है। मैंने इन उपनिषदों में एक विषय अच्छी तरह से देखा है, पहले द्वैतभाव की बातें, उपासना आदि आरंभ हुई है, अन्त में अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्वास से वह समाप्त हुआ है।

मेरे आचार्य श्री रामकृष्णदेव का मत-समन्वय

इसलिये इस समय इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश से मैं देख रहा हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादी इन दोनों को आपस में विवाद करने का कोई कारण नहीं। दोनों का जातीय जीवन में विशेष स्थान है। द्वैतवादी रहेंगे ही, अद्वैतवादियों की तरह द्वैतवादियों का भी जातीय जीवन में विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता; एक दूसरे का

द्वैत और अद्वैतवाद का समन्वय

संसार में और कहाँ पर सम्पूर्ण जगत के सम्पूर्ण दार्शनिक भाव का पूर्ण चित्र पायेंगे ? हिन्दू जाति की समग्र चिन्ता धारा का, मनुष्य जाति की मुक्ति कामना की सारी कल्पना का सारांश जैसी विचित्र भाषा में चित्रित हुआ है, जैसे अद्भुत रूप का वर्णन किया गया है, वैसा और कहाँ पर पाओगे ?

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥
यदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम्।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्य मुपैति ॥३॥

—मुण्डकोपनिषद-३-१

एक वृक्ष पर सुन्दर पाँख वाली दो सुन्दर चिड़ियाँ बैठी हैं, उन दोनों में परस्पर मैत्री भाव है! उनमें से एक उस वृक्ष का फल खाती है, दूसरा फल न खाकर चुपचाप शान्त भाव से बैठी है। नीचे की शाखा पर बैठी चिड़िया कभी मीठा, कभी कड़वा फल खाती है, एवं इसी कारण कभी सुखी होती है, कभी दुखी, लेकिन ऊपर की शाखा वाली चिड़िया स्थिर गम्भीर भाव से बैठी है, वह अच्छा बुरा कोई फल नहीं खाती—वह सुख दुःख दोनों से उदासीन है, अपने में ही मस्त है। ये पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन में स्वादिष्ट और कड़वे फल खाता है, वह अर्थ की खोज में व्यस्त है—वह इन्द्रियों के

पीछे दौड़ रहा है; संसार के क्षणिक सुख के लिये पागल की तरह दौड़ रहा है। और एक स्थान पर उपनिषद सरथी और उसके चंचल दुष्ट घोड़े के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय सुखान्वेषण की तुलना की है। मनुष्य इसी प्रकार जीवन में व्यर्थ सुख के अन्वेषण में घूमता फिरता है। जीवन के आरंभ काल में मनुष्य कितने सुनहले स्वप्न देखता है, किन्तु शीघ्र ही वह समझ जाता है कि वे केवल स्वप्न थे, वृद्धावस्था को पहुँचने पर वह अपने पहले के कर्मों की आवृत्ति करता है,

उपनिषदों का आरंभ द्वैतवाद से होता है और अन्त अद्वैतवाद पर होता है। उदाहरण जीवात्मा और परमात्मा रूपी पक्षी द्वय

लेकिन किस तरह वह घोर संसार जाल से मुक्त हो सकता है, इसका कोई उपाय नहीं खोजता। मनुष्य की नियति है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन में समय समय पर ऐसे क्षण उपस्थित होते हैं, ऐसे शोक आनंद का समय उपस्थित होता है, मानो सूर्य के ढांकने वाली बादल एक क्षण के लिये हट जाती है। उस समय हम लोग अपनी ससीम भाव के होते हुए भी क्षण काल के लिये उस सर्वातीत सत्ता का चकित होकर दर्शन करते हैं; दूरी पर—पञ्चेन्द्रियों से बद्ध जीवन के बहुत पीछे, दूरी पर, संसार के सुख दुःख से दूरी पर, इहलोक और परलोक में जिस सुख के भोगने की हम लोग कल्पना करते हैं, उससे बहुत दूरी पर उसका दर्शन करते हैं। उस समय मनुष्य क्षण भर के लिये दिव्यदृष्टि प्राप्त कर स्थिर हो जाता है, उस समय वह वृक्ष के

नहीं है। आगे चलकर विशेषण देकर क्रमागत भाव को और जटिल किया गया, असली बात बिल्कुल छिप गई, उस समय शास्त्र रूपी गोरख धन्धे के बाहर जाने का उपाय न रहा, उपनिषदों में इस तरह की किसी चेष्टा का पता नहीं चलता। अगर यह मनुष्यों के बनाये होते तो एक ऐसे जाति का साहित्य होते जो कभी अपने जातीय तेजवीर्य का एक बूँद भी नष्ट नहीं करते। इसका प्रत्येक पृष्ठ हम लोगों को तेज वीर्य की बात बतलाता है।

इस बात को अच्छी तरह से याद रखना होगा—जिन्दगी भर मैंने इसी की शिक्षा पाई है। उपनिषद हम लोगों से कहते हैं कि हे मनुष्यो, तेजस्वी बनो, दुर्बलता त्याग दो। मनुष्य कातर भाव से पूछता है कि मनुष्य में दुर्बलता है या नहीं? उपनिषद् कहते हैं कि दुर्बलता है, लेकिन इससे भी अधिक दुर्बलता के द्वारा यह कैसे दूर हो सकती है? भला मैले से मैला साफ़ हो सकता है? पाप के द्वारा कहीं पाप दूर हो सकता है? उपनिषद कहते हैं कि हे मनुष्यो, तेजस्वी बनो, उठ कर खड़े हो, वीर्यवान बनो। संसार के साहित्य भर में केवल इसी में 'अभीः' भयशून्य यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है और किसी शास्त्र में मनुष्य या ईश्वर के लिये 'अभीः' 'भयशून्य' यह विशेषण व्यवहृत नहीं हुआ है। यह शब्द कहते ही हमारे मानसिक नेत्रों के सामने प्राचीन काल के यूनान वासी सिकन्दर का चित्र खड़ा होता

उपनिषदोंका उपदेश है कि निर्भय बनो, तेजस्वी बनो

पीछे दौड़ रहा है; संसार के क्षणिक सुख के लिये पागल की तरह दौड़ रहा है। और एक स्थान पर उपनिषद सारथी और उसके चंचल दुष्ट घोड़े के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय सुखान्वेषण की तुलना की है। मनुष्य इसी प्रकार जीवन में व्यर्थ सुख के अन्वेषण में घूमता फिरता है। जीवन के आरंभ काल में मनुष्य कितने सुनहले स्वप्न देखता है, किन्तु शीघ्र ही वह समझ जाता है कि वे केवल स्वप्न थे, वृद्धावस्था को पहुँचने पर वह अपने पहले के कर्मों की आवृत्ति करता है,

उपनिषदों का आरंभ द्वैतवाद से होता है और अन्त अद्वैतवाद पर होता है। उदाहरण जीवात्मा और परमात्मा रूपी पक्षी द्वय

लेकिन किस तरह वह घोर संसार जाल से मुक्त हो सकता है, इसका कोई उपाय नहीं खोजता। मनुष्य की नियति है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन में समय समय पर ऐसे क्षण उपस्थित होते हैं, ऐसे शोक आनंद का समय उपस्थित होता है, मानो सूर्य के ढांकने वाली बादल एक क्षण के लिये हट जाती है। उस समय हम लोग अपनी ससीम भाव के होते हुए भी क्षण काल के लिये उस सर्वातीत सत्ता का चकित होकर दर्शन करते हैं; दूरी पर—पञ्चेन्द्रियों से बद्ध जीवन के बहुत पीछे, दूरी पर, संसार के सुख दुःख से दूरी पर, इहलोक और परलोक में जिस सुख के भोगने की हम लोग कल्पना करते हैं, उससे बहुत दूरी पर उसका दर्शन करते हैं। उस समय मनुष्य क्षण भर के लिये दिव्यदृष्टि प्राप्त कर स्थिर हो जाता है, उस समय वह वृक्ष के

नहीं है। आगे चलकर विशेषण देकर क्रमागत भाव को और जटिल किया गया, असली बात बिल्कुल छिप गई, उस समय शास्त्र रूपी गोरख धन्धे के बाहर जाने का उपाय न रहा, उपनिषदों में इस तरह की किसी चेष्टा का पता नहीं चलता। अगर यह मनुष्यों के बनाये होते तो एक ऐसे जाति का साहित्य होते जो कभी अपने जातीय तेजवीर्य का एक बूँद भी नष्ट नहीं करते। इसका प्रत्येक पृष्ठ हम लोगों को तेज वीर्य की बात बतलाता है।

इस बात को अच्छी तरह से याद रखना होगा—जिन्दगी भर मैंने इसी की शिक्षा पाई है। उपनिषद् हम लोगों से कहते हैं कि हे मनुष्यो, तेजस्वी बनो, दुर्बलता त्याग दो। मनुष्य कातर भाव से पूछता है कि मनुष्य में दुर्बलता है या नहीं? उपनिषद् कहते हैं कि दुर्बलता है, लेकिन इससे भी अधिक दुर्बलता के द्वारा यह कैसे दूर हो सकती है? भला मैले से मैला साफ़ हो सकता है? पाप के द्वारा कहीं पाप दूर हो सकता है? उपनिषद् कहते हैं कि हे मनुष्यो, तेजस्वी बनो, उठ कर खड़े हो, वीर्यवान बनो। संसार के साहित्य भर में केवल इसी में 'अभीः' भयशून्य यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है और किसी शास्त्र में मनुष्य या ईश्वर के लिये 'अभीः' 'भयशून्य' यह विशेषण व्यवहृत नहीं हुआ है। यह शब्द कहते ही हमारे मानसिक नेत्रों के सामने प्राचीन काल के यूनान वासी सिकन्दर का चित्र खड़ा होता

उपनिषदोंका उपदेश है कि निर्भय बनो, तेजस्वी बनो

है। जब वह दिग्विजयी सम्राट सिन्धु नदी के तट पर खड़ा था और जंगल के रहने वाले शिलाखंड पर बैठे बिल्कुल नंग धड़ंग साधु से बात कर रहा था। सम्राट उस साधु के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होकर उन्हें खूब रुपये पैसे का लालच देकर ग्रीस देश में चलने के लिये कह रहा था। सन्यासी ने धन आदि के प्रलोभन की बात सुनकर हँसते हुए यूनान जाने से इन्कार किया। तब सम्राट ने अपना राजतेज दिखलाते हुए कहा, "अगर आप न चलेंगे तो मैं आपको मार डालूँगा"। तब साधु ने ठठाकर कहा, "तुमने जैसी झूठी बात अभी कही है, वैसी बात फिर कभी न कहना। मुझको कौन मार सकता है? इस जड़ जगत् के सम्राट! तुम मुझे मार सकते हो? यह कभी नहीं हो सकता! मैं चैतन्य-स्वरूप, अज और अक्षय हूँ। मैं न तो कभी जन्म लेता हूँ और न कभी मरता हूँ। मैं अनन्त हूँ, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ! तुम बालक हो, तुम मुझे मार सकते हो?" यही असली तेज है, यही असली वीर्य है।

हे भाइयो, हे देशवासियो, मैं जितना ही उपनिषदों को पढ़ता हूँ, उतना ही मैं आप लोगों के लिये आँसू बहाता हूँ, क्योंकि उपनिषद् में कही हुई तेजस्विता को ही हम लोगों को अपने जीवन में परिणत करने की आवश्यकता हो गई है। शक्ति, शक्ति यही हम लोगों के लिये आवश्यक है। हम लोगों के लिये बल की विशेष आवश्यकता है। कौन हम लोगों को बल देगा? हम लोगों को दुर्बल बनाने को हज़ारों बातें हैं, हम लोगों ने काफी कहानियाँ सुनी हैं। हम लोगों के प्रत्येक पुराण में इतनी कहानियाँ

हैं कि जिनसे, संसार के जितने भर पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है। ये सभी हमी लोगों के हैं। जो कुछ हम लोगों की जाति को दुर्बल कर सकती है, वह पिछले हज़ार वर्षों के भीतर ही हुई है। जान पड़ता है कि पिछले हजार वर्षों से हमारे जातीय जीवन का एकमात्र यही लक्ष्य था कि किस तरह हम लोग और दुर्बल बनें। अन्त में हम लोग वास्तव में कीड़े के समान हो गये हैं इस समय जिसकी इच्छा होती है, वही हम लोगों को मसल डालता है। हे भाइयो ! आप लोगों के साथ मेरा-खून का सम्बन्ध है, जीवन-मरण का सम्बन्ध है। मैं आप लोगों से पहले कहे कारणों के लिये कहता हूँ कि हम लोगों के लिये शक्ति की आवश्यकता है। और उपनिषद् शक्ति के वृहत् आकर हैं। उपनिषद् जो शक्ति संचार कर सकते हैं उससे वे सारे संसार को तेजस्वी कर सकते हैं। उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् को पुनर्जीवन दिया जा सकता है, उसे शक्तिशाली और वीर्यशाली बनाया जा सकता है। वे सभी जातियों, सभी मतों और सम्प्रदाय के दुखी पददलित लोगों को उच्च स्वर से पुकार कर कह रहे हैं तुम अपने पैरों खड़े होकर मुक्त होओ। मुक्ति वा स्वाधीनता, (चाहे शारीरिक स्वाधीनता हो चाहे मानसिक, चाहे आध्यात्मिक हो,) उपनिषदों का मूल मंत्र है। जगत् में यही एकमात्र शास्त्र उद्धार का उपाय बतलाता है, मुक्ति का मार्ग बतलाता है। असली बधंन से मुक्त होओ, दुर्बलता से मुक्त होओ।

और उपनिषद् आपको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति आप में पहले ही से विद्यमान है। यही मत उपनिषदों की एक विशेषता है। चाहे आप द्वैतवादी भले ही हों, किन्तु आपको यह स्वीकार ही करना पड़ेगा कि आत्मा स्वभावतः पूर्ण स्वरूप है। केवल कुछ कार्यों के द्वारा यह संकुचित हो गया है। आधुनिक विकासवादी (Evolutionists) जिसको क्रम विकास कहते हैं, वैसा ही रामानुज का संकोच और विकास का मत भी है।

आत्मा की स्वरूपावस्था, इस विषय में द्वैत और अद्वैत का एकमत

आत्मा अपनी स्वाभाविक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकुचित हो जाता है, उसकी शक्ति अव्यक्त भाव धारण करती है। सत्कर्म और सत्चिन्तन द्वारा वह फिर विकास को प्राप्त होता है उसी दशा में उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट होती है। अद्वैतवादियों के साथ द्वैतवादियों का यहीं मतभेद उपस्थित होता है कि अद्वैतवादी प्रकृति का परिणाम स्वीकार करते हैं। आत्मा का नहीं। मानो एक पर्दा है, उसमें एक छोटा सा छेद है। मैं इस पर्दे की आड़ में रहकर सारी जनता को देखता हूँ। मैं पहले केवल थोड़े से मुँह भर देख पाऊँगा। मान लो वह छोटा सा छेद बढ़ने लगा, छेद जितना ही बढ़ता जायगा, उतने ज़्यादा लोगों को देखने में समर्थ होता जाऊँगा। अन्त में वह छेद बढ़ते बढ़ते पर्दा और छेद एक हो जायगा। उस समय तुममें और हम में कोई अन्तर न रह जायगा। इस स्थान पर तुममें और हममें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जो कुछ

परिवर्तन हुआ, है वह परदे में हुआ है। तुम शुरू से लेकर अन्त
तक एक रूप थे, केवल परदे में ही परिवर्तन
द्वैतवाद और हुआ था। परिणाम के सम्बन्ध में अद्वैत-
अद्वैतवाद में भेद; वादियों का मत है प्रकृति का परिणाम और
अद्वैतवादी प्रकृति आभ्यन्तरिक आत्मा की स्वरूपभिव्यक्ति।
का परिणाम मानते आत्मा किसी प्रकार संकोच को प्राप्त नहीं
हैं आत्मा का नहीं। होता। वह अपरिणामी और अनन्त है।
वह माया के पर्दे में मानो ढका हुआ था। यह
माया का पर्दा जितना ही क्षीण होता जाता है उतना ही आत्मा
की जन्मगत स्वाभाविक महिमा का आविर्भाव होता जाता है और
क्रमशः वह और अधिक प्रकट होने लगता है।

इसी महान् तत्व को भारत से सीखने के लिये संसार प्रतीक्षा
कर रहा है। वे चाहे जो कुछ कहें, वे अपने गौरव को प्रकट करने
की चाहे जितनी चेष्टा करें, क्रमशः ज्यों ज्यों दिन बीतते जाँयगे
वे समझते जाँयगे कि इस तत्व को स्वीकार किये बिना कोई
समाज टिक नहीं सकता। आप लोग क्या देख नहीं रहे हैं
कि सभी बातों में कितना बड़ा परिवर्तन हो रहा है? आप लोग
क्या देख नहीं रहे हैं कि पहले सभी स्वभावतः मंद है, इस कारण
उन्हें ग्रहण करने की प्रथा थी, लेकिन इस समय वह स्वभावतः
अच्छी प्रमाणित हो रही है? क्या शिक्षा प्रणाली में, क्या
अपराधियों को दण्ड देने में, क्या पागलों की चिकित्सा करने में,
यही क्यों, साधारण रोगों की चिकित्सा में भी प्राचीन नियम

था कि सभी स्वभावतः मन्द है, इससे इन्हें ले लो। आधुनिक नियम क्या है? आजकल का विधान बतलाता है कि शरीर स्वभावतः स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोग को शान्त कर सकता है। औषधि शरीर के अन्दर सार पदार्थ के संचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में नवीन विधान क्या कहता है? नवीन विधान स्वीकार करता है कि कोई अपराधी व्यक्ति चाहे जितना ही हीन हो, लेकिन उसमें जो ईश्वरत्व है, वह कभी परिवर्तित नहीं हो सकता, इसलिये अपराधियों के प्रति वैसा व्यवहार करना कर्तव्य है। आजकल पहले के सब भाव बदलते जा रहे हैं। इस समय कई स्थानों पर कारागार को संशोधनागार कहा जाता है। सभी बातों में ऐसा ही हो रहा है। ज्ञातरूप में अथवा अज्ञात रूप में हो, सभी के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, यह भारतीय भाव और और देशों में भी और कई रूप में व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्र में ही केवल इसकी व्याख्या की गई है, इन्हें इस व्याख्या को स्वीकार करना ही पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में बड़ा परिवर्तन हो जायगा और मनुष्यों का केवल दोष दिखलाने के सारे भाव दूर हो जायँगे। इसी शताब्दी में ही यह भाव लुप्त हो जायगा। इस समय लोग आपको गाली दे सकते हैं। 'संसार में पाप नहीं है' मैं इस अत्यन्त नीच भाव का प्रचार कर रहा हूँ, यह दोषारोपण करके संसार के इस सिरे से लेकर उस सिरे तक के लोगों ने

मुझे बुरा भला कहा है। गालियाँ दी हैं। लेकिन आगे चलकर जो लोग मुझे गालियाँ दे रहे हैं, उन्हीं के वंशधर यह समझ कर कि मैं धर्म का प्रचार कर रहा हूँ अधर्म का नहीं, मुझे आशीर्वाद देंगे। मैं अज्ञान रूपी अन्धकार का विस्तार न कर ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाने की चेष्टा करता हूँ यह समझ कर मैं गौरव अनुभव करता हूँ।

संसार हमारे उपनिषदों से एक और तत्व सीखने की प्रतीक्षा कर रहा है—वह तत्व है जगत की अखण्डता। अत्यन्त प्राचीन काल में एक वस्तु से दूसरी वस्तु में जो पृथकत्व समझा जाता था, इस समय वह जल्दी जल्दी दूर हो रहा है। बिजली और भाफ का बल संसार के भिन्न भिन्न भाग को एक दूसरे से परिचित करा देता है। उसके फल-स्वरूप हम हिन्दू लोग अपने देश को छोड़ कर और सब देशों को केवल भूत-प्रेत और राक्षसों से पूर्ण नहीं समझते और ईसाई भी नहीं कहते हैं कि भारत में केवल नर-मांस खाने वाले और असभ्य लोग निवास करते हैं। अपने देश से बाहर होकर हम देखते हैं कि हमारे ही भाई सहायता के लिये अपने बाहों को फैलाते हैं और मुँह से उत्साहित करते हैं। बल्कि समय समय पर और देशों में हमारे देश से अधिक इस तरह के लोग दिखलाई पड़ते हैं। वे भी जब यहाँ पर आते हैं, वे भी यहाँ पर अपने ही तरह भ्रातृ भाव, उत्साह वाक्य और

उपनिषदों से संसार और एक तत्व सीखेगा-वह तत्व है जगत की अखंडता

सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है कि अज्ञान ही सब दुखों का कारण है। सामाजिक या आध्यात्मिक, हमारे जीवन के चाहे जिस किसी भी विषय को लीजिये उसी पर वह पूर्णरूप से सच्चा प्रमाणित होता है। अज्ञान से ही हम लोग एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, एक दूसरे को न जानने के ही कारण एक दूसरे से प्रेम नहीं करते हैं। जब हम एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं, उसी समय हम लोगों में प्रेम हो जाता है। प्रेम क्यों न उत्पन्न होगा जब कि हम लोग सभी एक आत्म रूप हैं। इसलिये हम देखते हैं कि प्रयत्न न करने पर भी हम सब लोगों में एकत्व भाव स्वभावतः ही आ रहा है। यही क्यों, राजनीति और समाज-नीति के क्षेत्र में भी जो समस्या बीस वर्ष पहले केवल जातीय थी, इस समय जातीय समस्या भित्ति पर उनकी मीमांसा नहीं की जाती। वे समस्यायें क्रमशः विशाल रूप धारण करती जाती हैं। अन्तर्जातीय रूपी विस्तृत भूमि पर ही उन सब की मीमांसा हो सकती है। अन्तर्जातीय संघ, अन्तर्जातीय परिषद्, अन्तर्जातीय विधान, यही आजकल के मूलमंत्र हैं। सभी के भीतर एकत्व भाव किस तरह बढ़ रहा है, यही उसका प्रमाण है! विज्ञान में भी जड़तत्वों के सम्बन्ध में इसी तरह का सार्वभौमिक भाव इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय आप सम्पूर्ण जड़ वस्तु को, समस्त जगत् को एक अखंड स्वरूप में एक बड़े जड़ समुद्र के रूप में वर्णन करते हैं, तुम मैं,

सूर्य-चन्द्र यही क्यों और जो कुछ है, सभी इस महान् समुद्र में विभिन्न छोटे छोटे आवर्त के नाम मात्र हैं, और कुछ नहीं हैं। मानसिक नेत्रों से देखने में वे एक अनन्त चिन्ता-समुद्र के रूप में जान पड़ते हैं। तुम और मैं उस चिन्ता-समुद्र में छोटे छोटे आवर्त के समान हैं और आत्म दृष्टि से देखने पर सारा जगत एक अचल, परिणामहीन सत्ता अर्थात् आत्मा जान पड़ता है। नीति के लिये भी जगत् आग्रह प्रकट कर रहा है, वह भी हमारे ग्रन्थों में है। नीति तत्व की भित्ति के सम्बन्ध में भी जानने के लिये संसार व्याकुल हो रहा है, इसे भी वे लोग हमारे ही शास्त्रों में पावेंगे।

भारत में हमें क्या करना चाहिये ? यदि विदेशियों को इन सब बातों की आवश्यकता है तो हम लोगों को बीस गुना आवश्यकता है! क्योंकि हमारे उपनिषद् चाहे जितने बड़े हों, दूसरी जातियों की तुलना में हमारे पूर्वज ऋषि चाहे जितने बड़े हों, मैं आप लोगों से स्पष्ट भाषा में कहता हूँ कि हम लोग दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। पहले हम लोगों में शारीरिक दौर्बल्य है, यह शारीरिक दुर्बलता ही हमारे एक तृतीयांश दुख का कारण है। हम लोग आलसी हैं। हम लोग कार्य कर नहीं सकते। हम लोग एक साथ मिल नहीं पाते, हम लोग एक दूसरे को प्यार नहीं करते। हम लोग अत्यन्त स्वार्थी हैं। जहाँ हम लोग तीन आदमी इकट्ठ होते हैं, तहाँ एक दूसरे के प्रति घृणा रखने लगते हैं, एक दूसरे को देखकर जलने लगते हैं। इस समय हम

लोगों की ऐसी ही दशा है, हम लोग इस समय बिल्कुल अस्त-व्यस्त दशा में हैं; अत्यन्त स्वार्थी हो गये हैं। कई शताब्दियों से हम लोग इसी विवाद में पड़े हैं कि तिलक इस तरह से करना चाहिये कि इस तरह से। अमुक व्यक्ति को देख लेने पर भोजन नष्ट हो जायगा, ऐसी बड़ी समस्या पर बड़े बड़े ग्रंथ लिखते हैं! जिस जाति के मस्तिष्क की सारी शक्ति इस तरह की सुन्दर गवेषणा में लगी है, वह जाति इससे ज्यादा उन्नति करेगी, इसकी आशा ही कैसे की जा सकती है! और हम लोगों को शर्म भी नहीं आती! हाँ, कभी कभी शर्म आती तो है! किन्तु हम लोग जो सोचते हैं, वह कर नहीं पाते। हम लोग सोचते तो बहुत हैं, किन्तु कार्य रूप में परिणत नहीं करते। इस तरह तोते की तरह चिन्तन करने का हम लोगों को अभ्यास हो गया है। आचरण में हम लोग पीछे पैर रखते हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दुर्बलता ही इसका कारण है। दुर्बल मस्तिष्क कुछ कर नहीं सकता। हम लोगों को इसे बदल कर मजबूत बनाना पड़ेगा, हमारे युवकों को पहले बलवान होना पड़ेगा, पीछे से धर्म भी चला आयेगा। ऐ हमारे युवको! तुम लोग बलवान बनो, तुम लोगों के प्रति यही मेरा उपदेश है। गीता पढ़ने की अपेक्षा

गीता और फ़ुटबाल

फ़ुटबाल खेलने से तुम स्वर्ग के ज्यादा निकट पहुँचोगे। मुझे अत्यन्त साहस के साथ ये बातें कहनी पड़ती हैं, किन्तु बिना कहे काम भी नहीं चलता। मैं तुम लोगों को प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि

जूता किस पैर में लगता है। मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान है। मैं तुम लोगों से कहता हूँ कि तुम लोगों का शरीर मजबूत होने पर तुम लोग गीता को ज़रा अच्छी तरह से समझोगे। तुम्हारा खून कुछ ताज़ा रहने पर तुम लोग श्रीकृष्ण की बड़ी प्रतिभा और महान् वीर्य को अच्छी तरह से समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर दृढ़ता के साथ स्थित रहेगा, जिस समय तुम लोग अपने को मनुष्य समझोगे, उसी समय तुम लोग उपनिषदों और आत्मा की महिमा को अच्छी तरह समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपने उपयोग में लगाना होगा। बहुधा लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से ऊब जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद या अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हम लोगों को इस समय केवल यही आवश्यक है कि हम लोग आत्मा की अपूर्वता, उसकी अनन्त शक्ति, अनंत वीर्य, अनन्त शुद्धत्व और अनन्त पूर्णता के तत्त्व को जानें।

अगर मुझे कोई लड़का होता, तो मैं उसे पैदा होते ही कहता, 'त्वमसि निरंजनः'। तुम लोगों ने पुराण में मदालसा की सुन्दर कथा पढ़ी होगी। उसके सन्तान होते ही उसे

त्वमसि निरंजनः अपने हाथ में लेकर हिलाते हुए गाकर कहने लगी 'त्वमसि निरंजनः'। इस उपाख्यान में महान् सत्य छिपा हुआ है। तुम अपने को महान् समझो तुम महान् बनोगे। सभी मुझसे पूछते हैं मैंने सारी दुनिया में घूम कर क्या प्राप्त किया? लोग अंगरेज़ पापी हैं आदि बहुत सी बातें

कहते हैं, लेकिन अगर सभी अंगरेज़ अपने को पापी समझते होते तो अफ्रीका के मध्य भाग के निवासी निग्रो जाति की अवस्था में और उनमें कोई अन्तर न होता। ईश्वर की इच्छा से वे लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते; बल्कि इस बात पर विश्वास करते हैं कि वे इस संसार के स्वामी हो कर जन्मे हैं, वे अपने महत्त्व में विश्वास रखते हैं। वे जिस बात में विश्वास करते हैं, उसे करते भी हैं। इच्छा होने पर वे लोग चन्द्रलोक सूर्य-लोक को भी जा सकते हैं। अगर वे अपने पुरोहितों की इस बात पर विश्वास करते कि वे अभागे पापी हैं, अनन्त काल तक उन्हें, नरक कुंड में जलता रहना पड़ेगा, तो आज जिस रूप में हम उन्हें देखते हैं, उस रूप में वे कभी नहीं होते। इसी प्रकार हम प्रत्येक जाति के भीतर देखते हैं कि उनके पुरोहित जो कहें और वे चाहे जितने ही बुरे संस्कारों में क्यों न फँसे हों, उनका आन्त-रिक ब्रह्मभाव कभी नष्ट नहीं होता, वह जागृत होता है। हम लोगों ने विश्वास खो दिया है।

अँग्रेज बड़े क्यों कर हैं? अपने आत्म विश्वास के जोर से

तुम लोग क्या मेरी बातों पर विश्वास करोगे? हम लोग अंग्रेज़ स्त्री पुरुषों से कम विश्वासी हैं, हजार गुना कम विश्वासी हैं। मुझे स्पष्ट बात कहनी पड़ती है, किन्तु ऐसा कहे बिना दूसरा चारा नहीं। तुम लोग क्या देख नहीं रहे हो कि अंग्रेज़ स्त्री पुरुष जब हमारे धर्म के एक आध तत्त्व को समझ पाते हैं, उस समय वे उसे लेकर मानों उन्मत्त हो उठते हैं और यद्यपि राजा

की जाति के हैं, तो भी अपने देशवालों के उपहास और मज़ाक़ की परवा न करके भारत में हमारे धर्म का प्रचार करते आये हैं। तुम लोगों में कितने आदमी ऐसा कर सकते हैं? सिर्फ़ इसी बात पर गौर करके देखलो। और फर क्यों नहीं सकते हो? तुम लोग जानते नहीं हो, इस कारण से नहीं कर सकते? यह बात भी नहीं है—उन लोगों की अपेक्षा तुम लोग अधिक

जानते हो, तो भी तुम लोग कार्य नहीं कर

तुम लोग जानते सकते। तुम लोगों का जितना जानने से
हो ज्यादा, किन्तु कल्याण हो सकता है, उससे ज्यादा जानते हो
शारीरिक निर्बलता यही तो तुम लोगों के लिये मुश्किल है। तुम
के कारण तुममें लोगों का रक्त कलुषित हो गया है, तुम्हारा
कार्य करने की मस्तिष्क गंदा हो गया है, तुम्हारा शरीर
शक्ति नहीं है। दुर्बल है। शरीर को बदल डालो, शरीर को

बदलना ही होगा। शारीरिक दुर्बलता ही सारे अनर्थों की जड़ है, और कुछ नहीं। गत कई शताब्दियों से तुम लोग अनेक संस्कारों, आदर्श की बातें कहते तो हैं, लेकिन कार्य के समय तुम में स्थिरता नहीं पाते। क्रमशः तुम लोगों के आचरण से संसार को विरक्ति पैदा हो गई है और संस्कार नामक वस्तु समस्त संसार के उपहास की वस्तु हो गई है। इसका कारण क्या है? तुम लोगों में क्या कम ज्ञान है? ज्ञान की कमी कहाँ है? तुम लोग ज़रूरत से ज्यादा ज्ञानी हो, सभी अनिष्टों का मूल कारण यही है कि तुम लोग कमजोर हो,

दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो; तुम लोगों का शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, तुम लोगों में आत्म विश्वास ज़रा भी नहीं है। सैकड़ों शताब्दियों से विदेशी जातियों ने तुम पर अत्याचार करते करते तुमको पीस डाला है। हे भाइयो! तुम्हारे ही लोगों ने तुम्हारे सब बल का हरण कर लिया है। तुम लोग इस समय पददलित हो, भग्न देह हो, बिना रीढ़ के कीड़े की तरह हो। कौन हम लोगों को इस समय बल देगा? मैं तुम लोगों से कहता हूँ कि हम लोग चाहें तो इसी समय हम लोगों में बल हो, इसी समय वीर्य हो।

इसको उपाय है उपनिषदों में बतलाये हुए आत्मतत्व में विश्वास

इस बल को प्राप्त करने का पहला उपाय है, उपनिषदों पर विश्वास करो और यह विश्वास करो कि 'मैं आत्मा हूँ' मुझे न तो कोई तलवार से छेद सकता है, न कोई यंत्र ही हमें पीस सकता है, न तो आग हमें जला सकती है, न हवा सुखा सकती है। मैं सर्वशक्तिमान हूँ। सर्वज्ञ हूँ! इसलिये ये आशाप्रद, परिणामप्रद वाक्य सदा उच्चारण किया करो। यह न कहो कि हम लोग दुर्बल हैं। हम लोग सब कुछ कर सकते हैं। हम लोग क्या नहीं कर सकते? हम लोगों के द्वारा सभी हो सकता है हम सब लोगों के भीतर वही महिमापूर्ण आत्मा विराजमान है। इस पर विश्वास करना पड़ेगा। नचिकेता के समान विश्वासी बनो। नचिकेता के पिता जिस समय यज्ञ कर रहे थे, उस समय नचिकेता के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम सब लोगों के भीतर वही श्रद्धा

पैदा हो; तुम सब लोग वीरों की तरह खड़े होकर इशारे से जगत का परिचालन करने वाले, महान्चेता महापुरुष बनो, सब तरह से अनन्त ईश्वर के समान बनो। मैं तुम सब लोगों को इसी रूप में देखना चाहता हूँ। उपनिषदों से तुम लोग ऐसी ही शक्ति प्राप्त करोगे, उनसे तुम लोग यही विश्वास ग्रहण करोगे। ये सभी बातें उपनिषदों में हैं।

उपनिषद क्या केवल सन्यासियों के लिये है ?

ऐं, यह तो साधु सन्यासियों के लिये है, यह तो गूढ़ विद्या है! पुराने समय में वन में रहने वाले केवल संसार-त्यागी महात्मा ऋषि मुनि-ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। शंकराचार्य ने कुछ दया के साथ कहा, गृहस्थ लोग भी उपनिषदों का अध्ययन कर सकते हैं; इससे उनका भला ही होगा। कोई अनिष्ट न होगा। तो भी लोगों के मन से वह संस्कार अब भी दूर नहीं होता है कि उपनिषदों में केवल वन जंगल की बातें भरी हैं। मैंने तुम लोगों से अभी उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेद के प्रकाश हैं, उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा ही वेदों की एक मात्र टीका, एक मात्र प्रामाणिक टीका स्वरूप गीता सदा के लिए बनाई गई है। इसके ऊपर और कोई टीका टिप्पणी नहीं चल सकती। इस गीता में प्रत्येक व्यक्ति के लिये वेदान्त का उपदेश दिया गया है। तुम चाहे जो कोई भी कार्य करो, तुम्हारे लिये वेदान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के ये सभी महान् तत्व केवल अरण्य में वा पर्वत की गुफा तक में ही आबद्ध न रहेंगे।

विद्यालय में, भजनालय में, दरिद्रों की कुटिया में मछुओं की झोपड़ी में, छात्रों के पढ़ने के कमरे में सभी स्थानों पर ये सभी तत्व आलोचित और कार्य रूप में परिणत होंगे। प्रत्येक स्त्री पुरुष, प्रत्येक बालक बालिका, जो कोई कार्य क्यों न करें, जिस किसी अवस्था में क्यों न रहें सर्वत्र वेदान्त के प्रभाव का विस्तार किया जाना आवश्यक है।

और डरने का कारण नहीं है। उपनिषदों के गूढ़ तत्व को साधारण, लोग किस तरह कार्य में परिणत करेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में लिखा हुआ है। अनन्त मार्ग है, धर्म अनन्त हैं, धर्म के मार्ग को छोड़ कर कोई जा नहीं सकता। तुम जो कर रहे हो, तुम्हारे लिये वही ठीक है अत्यल्प कर्म भी

सर्वसाधारण में वेदान्त ज्ञान की आवश्यकता और उसकी कार्यकारिता

ठीक तरह से करने पर, उससे अद्भुत फल की प्राप्ति हो सकती है, इसलिये जिससे जितना हो सके करे। मछुआ अगर अपने को आत्मा समझ कर चिन्तन करेगा तो एक अच्छा मछुवा होगा। विद्यार्थी अगर अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करेगा तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील अगर अपने को आत्मा समझ कर चिन्तन करेगा तो वह एक अच्छा वकील बन सकता है। इसी प्रकार अन्यान्य सभी लोगों के सम्बन्ध में समझना चाहिये। और इसका फल यह होगा कि जाति विभाग अनन्त काल के लिये रहेगा। समाज का स्वभाव ही है,—विभिन्न श्रेणी में

विभक्त होना। तब वह दूर कैसे हो सकता है? विशेष विशेष अधिकार और न रहेंगे। जाति विभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में मैं कोई खास काम करूँगा और तुम कोई करोगे। तुम चाहे एक देश का शासन करो, और मैं एक जोड़ा टूटा जूता ही मरम्मत करूँ। परन्तु ऐसा होने से तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। तुम क्या मेरा जूता मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या देश का शासन कर सकता हूँ?—यह कार्य विभाग स्वाभाविक है। मैं जूता सीने में पटु हूँ और तुम वेद पढ़ने में कुशल हो। ऐसा होने से तुम मेरे सिर पर पैर नहीं रख सकते, तुम खून करने पर प्रशंसा के पात्र बनो और मैं एक साधारण चोरी के इल्जाम में फाँसी पाऊँ, यह नहीं हो सकता। यह अधिकार की विषमता दूर हो जायगी। जाति विभाग अच्छी चीज़ है। जीवन-समस्या को हल करने के लिये एकमात्र यही स्वाभाविक साधन है। लोग अपने को कई श्रेणियों में बांटेंगे, इस के सिवाय दूसरा चारा नहीं। जहाँ पर जाओ, जाति विभाग देखोगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यह अधिकार की विषमता भी रहेगी। इनको समूल नष्ट करना होगा। अगर तुम मछुए को वेदान्त सिखाओगे तो वह कहेगा कि तुम जैसे हो, मैं भी वैसा ही हूँ। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुवा हूँ। लेकिन तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मेरे भीतर भी है। और वही

वेदान्त प्रचार के द्वारा जाति विभाग अनन्त काल तक बना रहेगा, केवल विशेष विशेष अधिकार नष्ट होंगे

मैं चाहता हूँ—किसी को कोई विशेष अधिकार न हो, सभी को उन्नति करने का पूरा पूरा मौक़ा मिले।

सभी लोगों को उनके आन्तरिक ब्रह्म के सम्बन्ध में शिक्षा दो। सब लोग अपने आप मुक्ति पायेंगे। उन्नति के लिये पहली चीज़ जो आवश्यक है, वह है स्वाधीनता। अगर तुम लोगों में कोई यह बात कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री या अमुक लड़के की मुक्ति दिला दूँगा तो यह अत्यन्त अन्यायपूर्ण बात होगी। मुझसे बार बार पूछा गया है कि आप विधवाओं और सम्पूर्ण स्त्री जाति की उन्नति के सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं? मैं इस प्रश्न का यह अन्तिम उत्तर देता हूँ कि क्या मैं विधवा हूँ जो मुझसे व्यर्थ का यह प्रश्न करते हो? क्या मैं स्त्री हूँ जो मुझसे बार बार इस प्रश्न को पूछते हो? तुम कौन हो जो नारी जाति की समस्या का हल करने के लिये आगे बढ़ते हो? कहीं तुम प्रत्येक विधवा और प्रत्येक रमणी के भाग्य-विधाता साक्षात् ईश्वर तो नहीं हो? वे अपनी समस्या का स्वयं ही हल करेंगी। भगवान सब की खबर लेंगे। तुम कौन हो जो तुम अपने को सर्वज्ञ समझ रहे हो? ऐ नास्तिको! तुम ख़ुदा के ऊपर ख़ुदाई क्यों जता रहे हो? क्या तुम जानते नहीं हो कि सभी आत्मा परमात्मा का स्वरूप हैं? अपने चरखे में तेल डालो, स्वयं तुम्हारे सिर पर बहुत सा बोझ है। ऐ नास्तिको! तुम्हारी समूची जाति तुम्हें उठाकर पेड़ पर बैठा सकती है, तुम्हारा समाज तुम्हें हाथ पर लेकर ऊपर उठा सकता है। गँवार तुम्हारी

तारीफ़ के पुल बाँध सकते हैं, लेकिन ईश्वर सोया हुआ नहीं है। तुमको वह पकड़ लेंगे और इस लोक में या परलोक में तुम अवश्य दण्ड पाओगे। इसलिये प्रत्येक स्त्री-पुरुष को, सभी को, ईश्वर दृष्टि से देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, केवल सेवा कर सकते हो। ईश्वर की सन्तानों की, यदि तुम्हारा सौभाग्य हो, तो स्वयं ईश्वर की सेवा करो। यदि ईश्वर की कृपा से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सको तो तुम धन्य होगे।

हम लोग संसार की सहायता नहीं कर सकते, सेवा करने का हमें अधिकार है।

तुम अपने को एक बहुत बड़ा आदमी न समझ बैठो। तुम धन्य हो जो तुम सेवा करने का अधिकार पाये हो, दूसरे नहीं पाते। कोई तुमसे सहायता की प्रार्थना नहीं करता। वह तुम्हारा पूजा स्वरूप है। मैं कितने दरिद्र पुरुषों को देखता हूँ मैं उनके पास जाकर, अपनी मुक्ति के लिये उनकी पूजा करता हूँ, वहाँ पर ईश्वर हैं। कितने लोग जो दुःख भोग रहे हैं वह तुम्हारी हमारी मुक्ति के लिए। जिससे हम लोग रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि रूपधारी ईश्वर की पूजा कर सकें। मेरी बातें बड़ी कठिन जान पड़ती होंगी, किन्तु मुझे यह कहना ही पड़ेगा; क्योंकि हमारे जीवन का यह बड़ा सौभाग्य है कि हम ईश्वर की इन भिन्न भिन्न रूपों में सेवा कर सकते हैं। किसी के ऊपर प्रभुत्व जमा करके किसी का कल्याण कर सकते हो, इस धारणा को छोड़ दो। तो भी जिस प्रकार बीज की

वृद्धि के लिये जल, मिट्टी, हवा आदि जुटा देने पर वह अपनी प्रकृति के अनुसार जो कुछ ग्रहण करना आवश्यक होता है, ग्रहण करना लेता है, और अपने स्वभावानुसार बढ़ता है, उसी तरह तुम भी दूसरे का कल्याण कर सकते हो।

संसार में ज्ञान का प्रकाश फैलाओ। आलोक का विस्तार करो। जिससे सभी लोग ज्ञान-रूपी प्रकाश को प्राप्त करें। जब तक सब लोग ईश्वर के पास पहुँच न जाँय, तब तक मानो तुम्हारा कार्य समाप्त नहीं होता। दरिद्रों के पास ज्ञान फैलाओ, धनियों के पास और भी प्रकाश फैलाओ, क्योंकि दरिद्रों की अपेक्षा धनियों को ज्यादा प्रकाश की आवश्यकता है। अशिक्षितों के पास प्रकाश ले जाओ, शिक्षितों के पास और भी ज्यादा प्रकाश फैलाओ, क्योंकि आजकल शिक्षाभिमान बहुत ज्यादा हो रहा है। इस प्रकार सब के आसपास प्रकाश का विस्तार करो; बाक़ी जो कुछ है, वह तो ईश्वर करेंगे ही, क्योंकि स्वयं भगवान ने कहा है :—

संसार में सर्वत्र ज्ञानालोक फैलाओ

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोस्त्व कर्मणि॥

—गीता २।४२।

कर्म करने ही भर का तुम्हें अधिकार है, फल का नहीं। तुम इस भाव से कर्म न करो कि इस कर्म को करके फल भोगूंगा और कर्मत्याग में तुम्हारी प्रवृत्ति न हो सके।

जिन्होंने हज़ारों वर्ष पहले हमारे पुरखों को इस प्रकार के उच्च तत्व सिखाये थे, वे हम लोगों को अपने आदेश को कार्य-रूप में परिणत करने की शक्ति प्राप्त करने में सहायता करें।

सर्वावयव वेदान्त

दूर, बहुत दूर पर, जहाँ पर लिपिबद्ध इतिहास को कौन कहे, जनश्रुति की क्षीण किरणें भी प्रवेश करने में असमर्थ हैं, अनन्त काल से स्थिर भाव से, यह आलोक जगमगा रहा है और बाह्य प्रकृति के विचित्र झँकोरे से कभी तो यह क्षीण पड़ जाता है, कभी खूब चमकने लगता है, किन्तु चिरकाल से यह जलता आ रहा है और स्थिर भाव से केवल भारत ही में नहीं, सम्पूर्ण मननशील जगत में इसकी पवित्र किरणें, मौन और शान्त भाव से, फैल रही हैं; उषा काल की ठंडी ठंडी हवा के संयोग से सुन्दर गुलाब की कलियों को खिला रही है, यही वह उपनिषदों की किरणें हैं यही वह वेदान्त दर्शन है। यह कोई नहीं बतला सकता कि कब पहले पहल भारत में इसका आगमन हुआ। इसका निर्णय करने में अनुमान बल और अनुसन्धानकर्ताओं की सारी चेष्टायें व्यर्थ हो चुकी हैं। विशेषकर इस सम्बन्ध में पाश्चात्य लेखकों के अनुमान इतने परस्पर विरोधी हैं कि उन पर निर्भर करके कोई निर्दिष्ट समय निश्चित करना असंभव है। हम हिन्दू लोग आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी कोई उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते। मैं निस्संकोच कहता हूँ कि मनुष्य ने आध्यात्मिक

वेदान्त का मौन प्रभाव

राज्य में जो कुछ पाया है, या पायगा, यही उसका आदि और यही उसका अन्त है। इसी वेदान्त समुद्र से समय समय पर ज्ञान रूपी लहरें उठकर कभी पूर्व की ओर और कभी पश्चिम की ओर प्रवाहित हो रही हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में इस लहर ने पश्चिम में प्रवाहित हो एथेन्स, अलेक्ज़ेण्ड्रिया और आन्तियक में जाकर ग्रीक वालों की चिन्ता-धारा को प्रभावित किया था।

यह बात निश्चित है कि सांख्यदर्शन ने यूनानियों के ऊपर विशेष प्रभाव डाला था। और सांख्य तथा भारतीय अन्यान्य सम्पूर्ण धर्म या दार्शनिक मत ही उपनिषद् वा वेदान्त के एक मात्र प्रमाण पर निर्भर करता है। भारत में और प्राचीन या आधुनिक काल में अनेक प्रकार के विरोधी सम्प्रदायों के रहने पर भी वे सभी उपनिषदों वा वेदान्त का प्रमाण के लिये मुँह ताकते हैं। तुम चाहे द्वैतवादी हो, विशिष्टाद्वैत-वादी हो, शुद्धाद्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी हो अथवा जिस प्रकार के अद्वैतवादी या द्वैतवादी हो, अथवा जिस किसी भी नाम से अपने मत को क्यों न पुकारो, तुम्हें अपने शास्त्र उपनिषदों की प्रामाणिकता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। यदि भारत में कोई सम्प्रदाय उपनिषदों की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करता; तो उस सम्प्रदाय को 'सनातन' नहीं कहा जा सकता और जैन, बौद्ध, मत ने उपनिषदों की प्रामाणिकता नहीं स्वीकार

वेदान्त ही हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सभी सम्प्रदायों की भित्ति है।

की, इसलिये वह भारतवर्ष से निकाल बाहर किये गये। इसलिये ज्ञात रूप में या अज्ञात रूप में वेदान्त ही भारतवर्ष के सभी सम्प्रदायों में व्यापमान है। और जिसे हम लोग हिन्दू धर्म कहते हैं यह अनन्त शाखा प्रशाखाओंवाला महान् अश्वत्थ वृक्ष रूप हिन्दू धर्म वेदान्त के प्रभाव से बिल्कुल अनुप्राणित है। ज्ञात रूप से चाहे अज्ञात रूप से वेदान्त ही हमारा जीवन है, वेदान्त ही हमारा प्राण है और हिन्दू कहने से ही वेदान्ती समझना चाहिये।

इसलिये भारतभूमि में भारतीय श्रोताओं के सन्मुख वेदान्त का प्रचार जैसे इस समय असंगत जान पड़ता है, किन्तु यदि किसी चीज का प्रचार करना है, तो वह यह वेदान्त ही है। विशेषकर इस युग में इसका प्रचार विशेप रूप से आवश्यक हो गया है। इसका कारण यह है कि मैंने आप लोगों से अभी कहा है कि भारतीय सभी सम्प्रदाय उपनिषदों को प्रमाण स्वरूप भले ही मानते हैं, परन्तु इन सम्प्रदायों में इस समय बड़ा विरोध देखने में आता है। बहुत बार बड़े बड़े ऋषि तक उपनिषदों में जो अपूर्व समन्वय है, उसे ग्रहण नहीं कर पाते थे। कई बार मुनियों तक में आपस में मतभेद हो जाने से विवाद उठ खड़ा होता था। यह मत भेद एक बार इतना ज्यादा बढ़ चला था, कि जिसका मत दूसरे से कुछ भिन्न नहीं है, वह मुनि ही नहीं है—नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्। किन्तु इस समय इस तरह का विरोध नहीं चल सकता। इस समय उपनिषदों के मंत्रों में गूढ़ रूप में जो

समन्वय है, उसकी अच्छी तरह से व्याख्या करना और प्रचार करना आवश्यक हो गया है। द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, अद्वैत-वादी सभी सम्प्रदायों में जो समन्वय है उसे सारे संसार के सामने स्पष्ट रूप से दिखलाना होगा। केवल भारत में ही नहीं, सारे जगत के सभी सम्प्रदायों में जो सामंजस्य विद्यमान है उसे दिखलाना होगा।

और मैंने ईश्वर कृपा से एक ऐसे व्यक्ति के चरणों तले बैठकर शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया है जिसका सारा जीवन ही उपनिषदों का समन्वय रूप—उत्तम. व्याख्या स्वरूप है जिसके उपदेश की अपेक्षा जीवन ही हज़ार गुना उपनिषदों के मंत्रों का जीता जागता भाष्य स्वरूप था। उनको देखने से जा न पड़ता था कि उपनिषदों के भाव मानो मानव रूप धारण करके प्रकट हुए हैं। सम्भवतः उसी समन्वय का भाव मेरे भीतर भी कुछ कुछ आया है। मैं जानता नहीं कि संसार के सामने यह प्रकाश कर सकेगा या नहीं, किन्तु वेदान्तिक सभी सम्प्रदाय परस्पर विरोधी नहीं हैं, वे परस्पर सापेक्ष्य है, एक दूसरे का चरम परिणति स्वरूप हैं, एक दूसरे के सोपान हैं, एवं अन्त में सब का लक्ष्य अद्वैत 'तत्वमसि' में पर्यवसान होगा, यही दिखलाना मेरे जीवन का व्रत है।

एक ऐसा समय था जिस समय भारत में कर्मकांड की बड़ी प्रबलता थी। वेद के इस कर्मकांड में बड़े उच्च उच्च आदर्श थे; इसमें सन्देह नहीं, हम लोगों का वर्तमान दैनिक कार्यक्रम में जो पूजा-

अर्चना सम्मिलित है, वह वैदिक कर्मकांड के अनुसार ही नियमित है, किन्तु तोभी वैदिक कर्मकांड भारत भूमि से प्राय: अन्तर्हित हो गया है। वैदिक कर्मकांड के अनुशासन के अनुसार हम लोगों का जीवन आजकल बिल्कुल नियमित हो सकता है।

वैदिक अपेक्षा वेदान्तिक नाम ही हिन्दुओं के लिये अधिक उपयोगी है

हम लोग अपने दैनिक जीवन में बहुत कुछ पौराणिक वा तांत्रिक हो गये हैं। किन्हीं किन्हीं स्थानों में भारतीय ब्राह्मण वैदिक मंत्रों का व्यवहार भले ही करते हैं, किन्तु उन स्थानों में भी उक्त वैदिक मंत्रों का क्रम अधिकांश स्थानों में वैदिक क्रम के अनुसार नहीं है, बल्कि तंत्र या पुराणों के अनुसार है। इसलिये वेदोक्त कर्मकांड के अनुवर्ती इस अर्थ में हम लोगों को वैदिक नाम से पुकारना मेरी समझ में संगत नहीं जान पड़ता। लेकिन हम लोग वेदान्तिक हैं, यह तो निश्चित है। जो हिन्दू नाम से परिचित है, उन्हें वेदान्तिक नाम से पुकारना अच्छा होगा। और मैं आप लोगों को पहले ही दिखला चुका हूँ कि द्वैतवादी वा अद्वैतवादी सभी सम्प्रदाय ही वेदान्तिक नाम से पुकारे जा सकते हैं।

वर्तमान समय में भारत में जो भी सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं, उन्हें मुख्यकर द्वैत और अद्वैत इन दो प्रधान विभाग में विभक्त किया जा सकता है। इनके अन्तर्गत जितने भी सम्प्रदाय छोटे छोटे मतभेदों के ऊपर अधिक ज़ोर देते हैं और जिनके ऊपर निर्भर कर विशुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि नये नये नाम ग्रहण

करना चाहते हैं, इससे कुछ होता जाता नहीं है। मोटे तौर पर उन्हें द्वैतवादी चाहे अद्वैतवादी इन दो श्रेणियों के भीतर किया जा सकता है। और भी आधुनिक सम्प्रदायों में कितने नये, दूसरे अति प्राचीन सम्प्रदायों के नये संस्करण मात्र जान पड़ते हैं। रामानुज के जीवन और उनके दर्शन को पूर्वोक्त एक श्रेणी का प्रतिनिधि और शंकराचार्य को दूसरी श्रेणी का प्रतिनिधि स्वरूप माना जा सकता है। रामानुज आधुनिक भारत के प्रधान द्वैतवादी दार्शनिक थे। और दूसरे द्वैतवादी सम्प्रदाय साक्षात वा परोक्ष रूप से उनके सम्पूर्ण उपदेशों का सारांश, यहीं क्यों अपने सम्प्रदाय की छोटी छोटी नियमावली तक उन्हीं से ग्रहण की है। रामानुज और उनके प्रचार-कार्य के साथ भारत के अन्यान्य द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदायों की तुलना करके देखने पर आश्चर्य होगा कि उनके उपदेश, साधन प्रणाली और साम्प्रदायिक नियमावली में कितनी समानता है। अन्यान्य वैष्णवाचार्यों में दक्षिणात्य के आचार्य प्रवर माध्व मुनि और उनके अनुयायी बंगाल प्रान्त के महाप्रभु चैतन्य के नाम लिये जा सकते हैं। चैतन्यदेव ने माध्वाचार्य की तरह बंगाल में प्रचार किया है। दक्षिणात्य में और भी कितने सम्प्रदाय हैं। जैसे विशिष्टाद्वैतवादी शैव। साधारणतः शैव लोग अद्वैतवादी हैं सिंहल तथा दक्षिणात्य के किन्हीं किन्हीं स्थानों को छोड़कर भारत में सर्वत्र यही अद्वैतवादी शैव सम्प्रदाय वर्तमान है। विशिष्टाद्वैतवादी शैव गण "विष्णु" नाम के बदले 'शिव' नाम रख लिया है

और जीवात्मा के परिमाण विषयक मतवाद के अतिरिक्त अन्यान्य सभी विषयों में रामानुज मतावलम्बी हैं। रामानुज के मतानुयायी आत्मा को अणु अर्थात् अत्यन्त क्षुद्र मानते हैं, किन्तु शंकराचार्य के अनुयायी उसे विभु अर्थात् सर्वव्यापी बतलाते हैं। अद्वैतवाद के माननेवाले सम्प्रदाय प्राचीनकाल में बहुत से थे। ऐसा अनुमान करने का यथेष्ठ, कारण है कि प्राचीन काल में ऐसे बहुत से सम्प्रदाय थे जिन्हें शंकराचार्य के सम्प्रदाय ने बिल्कुल ग्रसित करके अपने सम्प्रदाय का अंग बना लिया है। किन्हीं-किन्हीं वेदान्त-भाष्यों में, विशेषकर विज्ञानभिक्षु कृत भाष्य में शंकर के ऊपर ही समय समय पर आक्रमण करना पाया जाता है। यहाँ पर यह कहना भी आवश्यक है कि यद्यपि विज्ञानभिक्षु अद्वैतवादी थे, तोभी उन्होंने शंकर के मायावाद को उड़ा देने की चेष्टा की है। ऐसे बहुत से सम्प्रदाय स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं जो इस मायावाद में विश्वास नहीं करते थे। यही क्यों, वे शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहने से भी बाज़ नहीं आते। उनकी धारणा थी कि बौद्धों से मायावाद को लेकर उन्होंने वेदान्त के भीतर घुसेड़ दिया है। जो हो, वर्तमान काल में सभी अद्वैतवादी शंकराचार्य के अनुयायी हैं और उनके शिष्यों ने उत्तरी भारत में और दक्षिणात्य में सर्वत्र अद्वैतवाद का विशेष रूप से प्रचार किया है। शंकराचार्य का प्रभाव हमारे बंगाल प्रान्त और काश्मीर पंजाब पर ज्यादा नहीं पड़ा है। लेकिन दक्षिणात्य में स्मार्त लोग सभी शंकराचार्य के अनुयायी हैं

और बनारस उत्तरी भारत में अद्वैतवाद का एक प्रधान केन्द्र है।

यहाँ पर और एक बात कहने से समझ में आयगा कि शंकराचार्य और रामानुज ने किसी नये तत्व के आविष्कार करने का दावा नहीं किया है। रामानुज ने स्पष्ट कहा है कि उन्होंने बोधायन भाष्य का अनुसरण करके उसके अनुसार ही वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की है। "भगवद्बोधायन कृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्र वृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते" इत्यादि बातें उनके भाष्य के प्रारंभ ही में हम देखते हैं। बोधायन भाष्य को कभी देखने का मुझे मौका नहीं मिला है। मैंने समूचे भारत में इसका अनुसंधान किया है, लेकिन मेरे दुर्भाग्य से उक्त भाष्य उपलब्ध नहीं हुआ। स्वर्गीय स्वामी दयानंद सरस्वती व्यास कृत वेदान्त सूत्र का बोधायन भाष्य को छोड़कर और किसी भाष्य को नहीं मानते थे और यद्यपि मौका बेमौका रामानुज के ऊपर कटाक्ष करने से बाज़ भी नहीं आते थे, फिर भी उन्होंने भी कभी बोधायन भाष्य को सर्वसाधारण के सम्मुख नहीं रखा। लेकिन रामानुज ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उन्होंने बोधायन के भाव, कहीं कहीं पर भाषा तक को अपनाकर अपने वेदान्त भाष्य की रचना की है शंकराचार्य ने भी प्राचीन भाष्यकारों के ग्रंथों का अवलम्बन करके अपना भाष्य बनाया, ऐसा अनुमान करने का भी काफी कारण मौजूद है। उनके भाष्य में कई स्थलों पर अत्यन्त प्राचीन

भाष्यों के नाम का उल्लेख पाया जाता है। और उनके गुरु तथा गुरु के गुरु जिस मत के मानने वाले थे वह मत अद्वैतवाद वेदान्त था बल्कि समय समय पर और किन्हीं किन्हीं विषयों में उनकी अपेक्षा अद्वैत तत्वों के प्रकट करने में उनसे भी बढ़कर साहसी और आगे बढ़े हुए थे, तब यह स्पष्ट ही जान पड़ता है कि उन्होंने भी किसी नये मत का प्रचार नहीं किया है। रामानुज ने जिस प्रकार बोधायन भाष्य का अनुसरण कर अपना भाष्य लिखा है, शंकर ने भी अपना भाष्य वैसे ही लिखा है तो भी किस भाष्य के अनुसरण पर उन्होंने अपने भाष्य की रचना की थी इसका इस समय निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है।

उपनिषद भारतीय दर्शन समूह की भित्ति हैं।

आप लोगों ने अभी जिन दर्शनों के सम्बन्ध में सुना है, उन सब की भित्ति उपनिषद ही हैं। जब वे वेदों की दुहाई देते हैं, उस समय उनका लक्ष्य उपनिषदों की ओर ही है। भारत के और दूसरे दर्शन यद्यपि उपनिषद से ही निकले हैं, किन्तु व्यास प्रणीत वेदान्त दर्शन की तरह और कोई दर्शन भारत में प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सका है। वेदान्त दर्शन भी अत्यन्त प्राचीन सांख्य दर्शन के चरम परिणति मात्र हैं। और सम्पूर्ण भारत के, यही क्यों सम्पूर्ण जगत के सभी दर्शन और सभी मत कपिल के विशेष ऋणी हैं। सम्भवतः मनस्तत्व और दार्शनिक विषयों में भारत के इतिहास में कपिल जैसा बड़ा मनुष्य नहीं पैदा हुआ। संसार में सर्वत्र ही कपिल का प्रभाव देखने में आता है। जहाँ

पर भी कोई परिचित दार्शनिक मत मौजूद है, वहीं पर उसका प्रभाव देख पाओगे। वह हज़ारों वर्ष का पुराना भले ही हो, तो भी उस पर उसी कपिल—उस तेजःपुंज अपूर्व प्रतिभा वाले कपिल—का प्रभाव देखने में आयगा। उनके मनोविज्ञान और उनके दर्शन की अधिकांश बातों का थोड़ा सा हेरफेर करके भारत के भिन्न भिन्न सम्प्रदाय उत्पन्न हुए हैं। हमारे ख़ास बंगाल में ही हमारे नैयायिक भारतीय दार्शनिक जगत पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सके हैं। वे छोटे छोटे सामान्य, विशेष, जाति, द्रव्य, गुण आदि बड़े बड़े पारिभाषिक शब्द-समूह (जिनको अच्छी तरह याद करने में सारी ज़िन्दगी ही बीत जाय) को लेकर व्यस्त रहे हैं। वे वेदान्तिकों पर दर्शनों की अलोचना का भार देकर स्वयं 'न्याय' लेकर व्यस्त थे किन्तु आधुनिक समय में भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदाय वालों ने बंगाल के नैयायिकों की विचार प्रणाली सम्बन्धी परिभाषा को ग्रहण किया है। जगदीश, गदाधर और शिरोमणि नामक नदिया ज़िले की तरह मालाबार प्रान्त के कोई कोई नगर प्रसिद्ध हैं। यह तो हुई अन्यान्य दर्शनों की बात। व्यास प्रणीत वेदान्त दर्शन सब दर्शनों से अधिक लब्ध प्रतिष्ठ है और उसका जो उद्देश्य है—अर्थात् प्राचीन सत्य को दार्शनिक रूप में वर्णन करना,—उसे सिद्ध कर वह भारत में स्थायित्व प्राप्त किये हैं। इस वेदान्त दर्शन में युक्ति को बिल्कुल वेदों के अधीन कर दिया है, शंकराचार्य ने भी एक स्थान पर उल्लेख किया है, व्यास ने विचार की चेष्टा बिल्कुल नहीं की है,

उनके सूत्र बनाने का एक मात्र उद्देश्य था—वेदान्त के मंत्र-रूपी पुष्प समूह को एक सूत्र (तागे) में गूँथ कर एक माला तैयार करना। उनके सूत्रों की प्रामाणिकता वहीं तक है, जहाँ तक वे उपनिषदों का अनुसरण करते हैं, इससे अधिक नहीं।

भारत के सभी सम्प्रदाय ही इस समय इस व्यास सूत्र को सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं। और यहाँ पर जो कोई भी नया सम्प्रदाय निकलता है, वही सम्प्रदाय अपने मन के मुताबिक व्यास सूत्र का एक नया भाष्य लिख डालता है। समय समय पर इन भाष्यकारों में बड़ा विरोध देखने में आता है। कभी कभी तो मूल के अर्थ का अनर्थ तक कर दिया जाता है। जो हो, यह व्यास सूत्र इस समय भारत में प्रधान प्रामाणिक ग्रन्थ का आसन ग्रहण किये हैं और व्यास सूत्र पर एक नया भाष्य लिखे बिना कोई सम्प्रदाय स्थापित करने की आशा नहीं कर सकता।

व्यास सूत्र

व्यास सूत्र के नीचे जगद्विख्यात् गीता प्रामाणिक माना जाता है। शंकराचार्य गीता का प्रचार करके ही अत्यन्त गौरव-शाली हुए हैं। इस महात्मा ने अपने शानदार जीवन में जो बड़े बड़े कार्य किये हैं, उनमें गीता का प्रचार और गीता का एक सुन्दर भाष्य लिखना अन्यतम है। भारत के और और सनातन धर्मावलम्बी सम्प्रदाय को चलाने वालों ने उनका अनुसरण करके गीता का एक एक भाष्य लिखा है।

गीता

उपनिषदों की संख्या प्रामाणिक और अप्रामाणिक उपनिषद

उपनिषदों की संख्या बहुत ज्यादा है। कोई कोई कहते हैं कि वे संख्या में १०८ हैं और कोई कोई उनकी संख्या और भी ज्यादा बतलाते हैं। उनमें से कितने तो स्पष्ट रूप से आधुनिक हैं। जैसे अल्लोपनिषद्। इनमें अल्लाह की स्तुति है और मुहम्मद को रसुल्ला कहा गया है। सुनने में आता है कि अकबर के राजत्व काल में हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के लिये इसकी रचना की गई थी। संहिता भाग में अल्ला वा इल्ला या इस तरह के किसी शब्द को पाकर उसका आधार लेकर इस उपनिषद् की रचना हुई है। इस प्रकार इस अल्लोपनिषद् में मुहम्मद रसुल्ला हुए हैं। इसका तात्पर्य चाहे जो कुछ भी हो, इस तरह के और भी बहुत से साम्प्रदायिक उपनिषद् हैं। उनके देखने से स्पष्ट ही जान पड़ता है कि वे बिल्कुल आधुनिक काल में बनाये गये हैं और इस तरह के उपनिषदों की रचना करना भी कोई कठिन कार्य न था। इसका कारण यह है कि वेद के संहिता भाग की भाषा इतनी प्राचीन है कि उसमें व्याकरण का ज्यादा बन्धन नहीं था। कई साल पहले एक बार मुझे वैदिक व्याकरण के सीखने की इच्छा हुई और मैंने बड़े शौक से पाणिनि और महाभाष्य को पढ़ना आरम्भ किया। लेकिन थोड़ा सा ही पढ़ने पर मैं देखकर आश्चर्यचकित हुआ कि वैदिक व्याकरण का प्रधान भाग केवल व्याकरण के साधारण नियमों का व्यतिक्रम मात्र है।

व्याकरण में एक साधारण नियम निश्चित हुए, इसके बाद यह कहा गया कि वेदों में इस नियम का अपवाद होगा। इसलिये आप लोग देखते हैं कि कोई भी आदमी मनमाना लिखकर कितनी आसानी से उसे वेद कहकर प्रचलित कर सकता है। केवल यास्क की निरुक्ति से ही कुछ रक्षा है। किन्तु इसमें केवल बहुत से एकार्थक शब्दों का समूह मात्र है। यहाँ पर ऐसा मौक़ा है, वहाँ जिसकी जितनी इच्छा हो, खुशी से उपनिषदों की रचना कर सकता है। यदि संस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान हो, तो प्राचीन वैदिक शब्दों की तरह बहुत से शब्दों को गढ़ा जा सकता है। जब व्याकरण का डर ही नहीं रहा तो रजमुल्ला हो, चाहे कोई मुल्ला हो, उसमें आसानी से ढुकाया जा सकता है। इस तरह बहुत से नये उपनिषद् रचे गये हैं और सुना है कि इस समय भी ऐसा ही होता है। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि भारत के किन्हीं-किन्हीं प्रदेश में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में अब भी इस तरह के नये उपनिषद् रचे जाते हैं। किन्तु इस तरह के जो उपनिषद् हैं वे स्पष्ट ही खोटा माल जान पड़ते हैं। शंकर, रामानुज और अन्यान्य बड़े-बड़े भाष्यकारों ने उन्हीं पर भाष्य की रचना की है।

इन उपनिषदों के और दो एक तत्वों के सम्बन्ध में मैं आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि उपनिषद् अनन्त ज्ञान के समुद्र हैं और मेरे जैसे एक अयोग्य व्यक्ति को उसका सम्पूर्ण तत्व कहने में अनेकों वर्ष लग जायँगे,

एक वक्तृता में कुछ न होगा। इस कारण से उपनिषदों की आलोचना में जो जो विषय मेरे मन में उत्पन्न हुए हैं, उनमें से दो एक विषय ही आप लोगों से कहना चाहता हूँ। पहली बात तो यह है कि उसके जैसा अपूर्व उपनिषद् अपूर्व- काव्य संसार में और कोई नहीं है। वेद की काव्य स्वरूप हैं। संहिता भाग की आलोचना करके देखने पर उसमें भी स्थान स्थान पर अपूर्व काव्य-सौन्दर्य का परिचय पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर ऋग्वेद संहिता के 'नासदीय सूक्त' की आलोचना कीजिये। उसमें प्रलय का गभीर अंधकार वर्णनात्मक यह श्लोक है—'तम आसीत् तमसा गूढ़मग्रे' इत्यादि। "जिस समय अन्धकार के द्वारा अंधकार घिरा हुआ था।" इसके पढ़ने से ही अनुभव होता है कि इसमें कवित्व का अपूर्व गाम्भीर्य छिपा हुआ है। आप लोगों ने क्या यह लक्ष्य किया है कि भारत के बाहरी प्रदेशों और भारत के भीतर भी गम्भीर भाव के चित्र अंकित करने की बहुत चेष्टायें हुई हैं? भारत के बाहर के देशों में इस चेष्टा ने सदा जड़ प्रकृति के अनन्त भावों के वर्णन का आकार धारण किया है—केवल अनन्त बहिर्प्रकृति, अनन्त जड़, अनन्त देशों का वर्णन ही वर्णन है। जहाँ मिल्टन, दान्ते या दूसरे किसी प्राचीन वा आधुनिक यूरोपीय महाकवि ने अनन्त के चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया है, वहाँ उसने अपनी कविता रूपी पंख की सहायता से अपने से दूर आकाश में विचरण कर अनन्त बहिर्प्रकृति का

थोड़ा सा आभास देने की चेष्टा की है। यह चेष्टा यहाँ भी हुई हैं। वेद संहिता में यह वहिर्प्रकृति का अनन्त विस्तार जिस तरह विचित्रता के साथ चित्रित होकर पाठकों के सामने उपस्थित होता है वैसा और कहीं पर भी नहीं दिखलाई पड़ेगा। संहिता के इस 'तम आसीत तमसा गूढ़े' इस वाक्य को स्मरण रखकर तीन विभिन्न कवियों के अन्धकार वर्णन की आपस में तुलना करके देखिये। हम लोगों के कालिदास ने लिखा है, "सूची-भेघ्य अन्धकार" मिल्टन ने लिखा है, "आलोक नहीं, दृश्यमान अन्धकार।" किन्तु ऋग्वेद संहिता कहता है, "अन्धकार अन्धकार के द्वारा आवृत था, अंधकार में अन्धकार छिपा हुआ था।" ग्रीष्म प्रधान देश में रहने वाले हम लोग इसे सहज ही समझ सकते हैं। जिस समय बरसात का मौसम एकाएक आरम्भ होता है, उस समय सारी दिशायें अन्धकार से भर जाती हैं और इधर उधर दौड़ते हुए काले काले बादल और दूसरे बादलों को ढक लेते हैं। जो हो, संहिता का यह कवित्व बिल्कुल अनोखा तो है, लेकिन यहाँ पर भी वहिर्प्रकृति के वर्णन की चेष्टा की गई है। अन्यत्र जिस प्रकार वहिर्प्रकृति के विश्लेषण के द्वारा मनुष्य-जीवन की महान् समस्याओं के समाधान की चेष्टा हुई है, यहाँ पर ठीक वैसा ही हुआ है। प्राचीन यूनानवासी अथवा आधुनिक काल के यूरोपियन लोग जिस प्रकार जीवन समस्या और जगत् के कारण भूत वस्तुओं के सम्बन्ध रखने वाले पारमार्थिक तत्वों के समाधान की इच्छा रखकर वहिर्प्रकृति

की ओर धावमान हुए थे, हमारे पुरखों ने भी यही किया था और यूरोपियन लोगों की तरह वे लोग भी विफल मनोरथ हुए थे। किन्तु पाश्चात्य जातियों ने इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं किया वह जहाँ पर थीं, वहीं पर पड़ी रहीं। वहिर्जगत में जीवन-मरण की बड़ी कठिन,समस्याओं को सुलझाने में असफल होकर वे और आगे न बढ़ सकीं। हमारे पूर्वजों ने भी इसे असम्भव जानो था, किन्तु उन्होंने इस समस्या के हल करने में इन्द्रियों को बिल्कुल असमर्थ ठहराया और यह बात सारे संसार के सामने निर्भयता से प्रकट भी कर दी। उपनिषद् निर्भय होकर कहते हैं:—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" तैति० २। ६

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति।

"मन के साथ वाक् उसे न पाकर जहां से लौट आता है।"

"जहाँ न तो चक्षु जा सकते हैं और न वाक् जा सकता है।"

इसके तथा इसी तरह के और वाक्यों के द्वारा उस बड़ी भारी समस्या के समाधान में इन्द्रियों की बिलकुल असमर्थता की बात को उन्होंने व्यक्त किया है। किन्तु वे इतना ही कह कर शान्त नहीं हुए हैं; उन्होंने 'वहिर्प्रकृति को छोड़कर अन्त-र्प्रकृति की ओर ध्यान दिया है। वे इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये अपने आत्मा के पास गये; वे अन्तर्मुखी हुए, उन्होंने जान लिया कि वे प्राणहीन जड़ पदार्थ से कभी सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकते। उन्होंने देखा कि वहिर्प्रकृति से प्रश्न करके कुछ भी उत्तर नहीं पाया जा सकता; वह उन्हें कोई आशापूर्ण बात

नहीं सुना सकती। इसलिये उन्होंने उससे सत्य के अनुसंधान की चेष्टा को व्यर्थ जान कर बहिर्प्रकृति को छोड़ दिया और उस ज्योतिर्मय जीवात्मा की ओर लौटे—वहाँ पर उन्हें उत्तर मिला।

"तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्यावाचो विमुञ्चथ।"

—मुण्डक २।२५

"एक मात्र उस आत्मा को ही पहचानो, और सब बातें छोड़ दो।"

उपनिषद् में जगत् की समस्या का समाधान बहिः-प्रकृति से नहीं, अन्तर्जगत के विश्लेषण में 'नेति' 'नेति' कहता है।

उन्होंने आत्मा से ही सारी समस्याओं को हल किया, उस आत्म-तत्त्व की आलोचना करके ही विश्वम्भर परमात्मा को, और जीवात्मा के साथ उनका सम्बन्ध, उनके प्रति हम लोगों के कर्त्तव्य एवं उनके अवलम्बन से हम लोगों का परस्पर का सम्बन्ध ये सभी बातें उन्होंने जानी। और इस आत्म-तत्व के वर्णन करने जैसा इस संसार में और कवित्व नहीं है। जड़ भाषा में इस आत्मा को चित्रित करने की आवश्यकता न रही। यही क्यों, उन्होंने आत्मा के वर्णन में निर्दिष्ट गुणवाचक शब्दों का एकबारगी परित्याग कर दिया। तब अनन्त की धारणा करने के लिये इन्द्रियों की सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता ही नहीं रही। बाह्य इन्द्रियों से ग्राह्य

अचेतन मृत जड़ भावापन्न अवकाश रूपी अनन्त के वर्णन की बात लोप हुई; उसके बदले में आत्म-तत्व ऐसी भाषा में वर्णन किया जाने लगा कि उपनिषदों के उन शब्दों का उच्चारण मात्र ही मानो एक सूक्ष्म अतिन्द्रिय राज्य की ओर अग्रसर कर देता है। दृष्टान्त के लिये इस श्लोक की बात याद कीजिये :—

"न तत्र सूर्येभाति न चन्द्रतारकम्।
ने मा विद्युतो भान्ति कुतो ह्यमग्नि ॥
तमेव भान्त मनुभाति सर्व्वं।
तस्य भासामिदं विभाति ॥"

मुण्डक २। २। १०

संसार में और कौन सी कविता इसकी अपेक्षा गम्भीर भाव को प्रकट करने वाली हो सकती है ?

"वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारे। यह विद्युत् भी वहाँ नहीं चमकता, मर्त्यलोक की आग का कहना ही क्या ?"

इस तरह की कविता और कहीं न पायेंगे। कठोपनिषद् की उस अपूर्व कथा को याद कीजिये। यह काव्य क्या ही अपूर्व और सर्व्वाङ्ग सुन्दर है! इसमें क्या ही अपूर्व शिल्प-कौशल प्रकट हो रहा है। इसका आरम्भ ही अपूर्व है। उस नचिकेता नामक बालक के हृदय में श्रद्धा का आविर्भाव हुआ है, उसकी यम के पास जाने की इच्छा हुई और उस 'आश्चर्यजनक' तत्व वक्ता स्वयं यम ने ही उसे जन्म-मृत्यु-रहस्य का उपदेश दिया। और वह उनसे क्या जानना चाहता था ? मृत्यु-रहस्य।

उपनिषद् के सम्बन्ध में जिस दूसरी बात की ओर आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ—वह यही है—वह किसी व्यक्ति विशेष की शिक्षा नहीं है। यद्यपि हम उनमें बहुत से आचार्यों और वक्ताओं के नाम पाते हैं, किन्तु उनमें से किसी के वाक्य पर उपनिषदों की प्रामाणिकता निर्भर नहीं करती। एक मन्त्र भी उनमें से किसी के जीवन पर निर्भर नहीं करता। ये सभी आचार्य और वक्ता मानो छाया-मूर्ति की तरह रङ्ग-मंच के पीछे रहते थे। उन लोगों को कोई मानो स्पष्ट रूप से देख नहीं पाता है; उनकी सत्ता मानो कोई स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाता है, लेकिन वास्तविक शक्ति तो है उपनिषद् की उन अपूर्व महत्व-पूर्ण ज्योतिर्मय तेजपूर्ण मन्त्रों के भीतर—व्यक्ति विशेष के साथ मानो उनका कोई सम्पर्क ही नहीं है। बीसों याज्ञवल्क्य आयें जायें, कोई हर्ज नहीं, मन्त्र तो हैं। तो भी वे किसी व्यक्ति विशेष के विरोधी भी नहीं हैं। संसार में प्राचीन काल में जिस किसी भी महापुरुष वा आचार्य का अभ्युदय हुआ है, या भविष्य में भी होगा, उनके विशाल और उदार वक्षस्थल पर उन सब के लिये स्थान हो सकता है। उपनिषद् अवतार या महापुरुषों की पूजा के विरोधी नहीं हैं, बल्कि उसके पक्ष में हैं। दूसरी ओर वे बिल्कुल व्यक्तियों के सम्बन्ध में निरपेक्ष

उपनिषद् का उपदेश व्यक्ति-विशेष के जीवन के ऊपर निर्भर नहीं करता।

किन्तु ये व्यक्ति-विशेष की पूजा के विरोधी नहीं हैं।

हैं। उपनिषदों का ईश्वर जैसा निर्गुण है अर्थात् व्यक्ति विशेष ईश्वर के अतीत तत्वों का विशेष रूप से समर्थक है, वैसे ही सम्पूर्ण उपनिषद् व्यक्ति-निरपेक्षता रूपी अपूर्व तत्वों के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। ज्ञानी, चिन्ताशील, दार्शनिक और युक्तिवादी ही व्यक्ति-निरपेक्ष तत्व मात्र को पा सकते हैं।

और यही हम लोगों का शास्त्र है। आप लोगों को याद रखना होगा कि ईसाइयों के लिये जिस तरह बाइबिल है, मुसलमानों के लिये जैसा क़ुरान है, बौद्धों के लिये जैसा त्रिपिटक है, पारसी लोगों के लिये जैसा जेन्दावस्ता है, वैसे ही हम लोगों के लिये उपनिषद् हैं। यही हम लोगों के शास्त्र हैं और दूसरे नहीं। पुराण, तन्त्र और दूसरे ग्रंथ, यही क्यों, व्यास-सूत्र तक प्रामाणिकता के लिये गौण हैं। हम लोगों का मुख्य प्रमाण वेद हैं। मन्वादि स्मृति शास्त्र और पुराण आदि जहाँ तक उपनिषदों से मिलते हैं, वहीं तक ग्रहण करने योग्य हैं; जहाँ पर दोनों में विरोध पाया जाय, वहीं पर स्मृति आदिकों के प्रमाण को निर्दयतापूर्वक परित्याग कर देना होगा। हम लोगों को यह बात सदा याद रखनी होगी, लेकिन भारत के दुर्भाग्य से हम लोग वर्तमान काल में इसे भूल से गये हैं। साधारण-साधारण गाँवों के आचार व्यवहार इस समय उपनिषदों के उपदेशों के स्थान पर प्रमाण स्वरूप हो रहे हैं। बङ्गाल के किसी दूर गाँव में कोई विशेष आचार या मत प्रचलित है, वही मानो वेद वाक्य, यही क्यों, उससे भी ज्यादा प्रामाणिक हो गया है। और 'सनातन

धर्मावलम्बी' इस पद का कितना प्रभाव है। किसी देहात के रहने वाले के सामने कर्मकाण्ड के सभी विशेष विशेष नियमों को विना छोड़े हुए जो पालन करता है वह सच्चा सनातन धर्मावलम्बी है और जो ऐसा नहीं करता वह हिन्दू नहीं है। अत्यन्त दुःख की बात है कि हमारी मातृ-भूमि में बहुत से ऐसे लोग हैं जो किसी तन्त्र विशेष का अवलम्ब लेकर सर्वसाधारण को उस तन्त्र के अनुसार चलने का उपदेश देते हैं। जो उसके अनुसार नहीं चलता है, वह उनके मत से सच्चा हिन्दू नहीं है। इसलिये हम लोगों के लिये इस समय यह स्मरण रखना आवश्यक है कि उपनिषद ही मुख्य प्रमाण हैं, गृह्य और श्रौत सूत्र तक वेदों के प्रमाण के अधीन हैं। ये उपनिषद् हम लोगों के पूर्व ऋषियों के वाक्य हैं और यदि आप लोग हिन्दू कहलाना चाहें तो आप लोगों को इस पर विश्वास करना होगा। आप लोग ईश्वर के सम्बन्ध में चाहे जो विश्वास कीजिये, लेकिन वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार न करने से नास्तिक कहलायँगे। ईसाई, बौद्ध तथा अन्यान्य शास्त्रों से हमारे शास्त्र में यही अन्तर है। इन्हें शास्त्र न कह कर पुराण कहना ठीक होगा। क्योंकि इनमें जलप्लावन का इतिहास, राजाओं और राजवंशों का इतिहास, महापुरुषों के जीवन-चरित आदि विषयों का वर्णन दिया हुआ है। यही पुराणों के लक्षण हैं, इसलिये जहाँ तक वे वेदों से मिलते हैं, वहीं तक ग्राह्य हैं। बाइबिल और दूसरे-दूसरे शास्त्र जहाँ तक वेदों के अनुकूल हैं, वहाँ तक मानने योग्य हैं, लेकिन

जहाँ नहीं मिलते, वहाँ पर मानने की आवश्यकता नहीं। .कुरान के सम्बन्ध में भी यही बात है। इन सभी ग्रन्थों में बहुत से नीति के उपदेश हैं, इसलिये वेदों के साथ जहाँ तक उनकी एकता है, वहाँ तक पुराणों की तरह वे प्रामाणिक हैं। बाकी अंश त्याज्य हैं।

वेदों के अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का प्रमाण है।

वेदों के सम्बन्ध में हम लोगों का यह विश्वास है कि वेद कभी लिखे नहीं गये, वेदों की उत्पत्ति ही नहीं हुई। एक ईसाई पादरी ने मुझसे एक बार कहा था कि उनकी बाइबिल ऐतिहासिक भित्ति पर स्थापित है, इसलिये सत्य है। इस पर मैंने उसे उत्तर दिया था कि हमारे शास्त्रों की ऐतिहासिक भित्ति कुछ नहीं है, इसीसे वे सत्य हैं। तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं तब निश्चय ही कुछ दिन पहले वे किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे। तुम्हारे शास्त्र मनुष्यों के रचित हैं, हम लोगों के नहीं। हम लोगों के शास्त्रों की अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का उत्कृष्ट प्रमाण है। वेदों के साथ आजकल के अन्यान्य शास्त्र ग्रन्थों का यही सम्बन्ध है।

यहाँ पर मैं उपनिषदों में जिन विषयों की शिक्षा दी गई है उनके सम्बन्ध में आलोचना करूँगा। उन में तरह तरह के भावों के श्लोक देखने में आते हैं कोई कोई तो द्वैतवादात्मक होते हैं।

द्वैतवादात्मक कहने से मैं क्या लक्ष्य करता हूँ ? कई विषयों में भारत के सभी सम्प्रदाय एक मत हैं। पहले, सभी सम्प्रदाय संसारवाद अथवा पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। दूसरे, मनस्तत्त्व विज्ञान भी सम्प्रदायों का एक समान है। पहले यह स्थूल शरीर, उसके बाद सूक्ष्म शरीर वा मन है। जीवात्मा उसी मन का होता है। पाश्चात्य और भारतीय मनोविज्ञान में यही भेद है कि पाश्चात्य मनोविज्ञान में मन और जीवात्मा में कुछ भेद नहीं माना जाता है, किन्तु यहाँ ऐसा नहीं होता। भारतीय मनोविज्ञान के मत से मन या अन्तःकरण मानो जीवात्मा के हाथ में यंत्र के समान हैं। इस यंत्र की सहायता से वह शरीर अथवा बाह्य जगत् के ऊपर कार्य करता रहता है। इस विषय में सभी एकमत हैं। और भी सभी सम्प्रदाय एक मत से स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा अनादि अनन्त है। जब तक वह बिल्कुल मुक्त नहीं हो जाता, तब तक उसका पुनः पुनः जन्म होता है।

उपनिषद के मुख्य मतवाद

और एक मुख्य विषय पर सभी एक मत हैं और यहीं पर भारतीय और पाश्चात्य विचारों में मौलिक भेद है कि वे जीवात्मा में पहले ही से सम्पूर्ण शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। अंगरेजी के (Inspiration) शब्द द्वारा जो भाव प्रकट होता है, उससे जाना जाता है कि मानो बाहर से कुछ आ रहा है, किन्तु हमारे शास्त्रों के अनुसार सब शक्ति, सब तरह का महत्व और पवित्रता आत्मा में ही विद्यमान है। योगी लोग आपसे बतलायेंगे

कि अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों को वे सिद्ध करना चाहते हैं वे पहले ही से आत्मा में विद्यमान हैं, उन्हें केवल व्यक्त भर करना होगा। पतञ्जलि के मत से हम लोगों के पैरों के नीचे चलने वाले छोटे से छोटे कीड़ों तक में अष्ट सिद्धि हैं केवल उनके देह रूपी आधार के अनुपयुक्तता के कारण वे प्रकाशित नहीं हो सकते। उत्कृष्ट शरीर के पाने से ही वे शक्तियाँ प्रकट हो सकेंगी, किन्तु वे पहले ही से विद्यमान थीं। उन्होंने अपने सूत्र में एक स्थान पर कहा है कि "निमित्तम प्रयोजकं प्रकृतीनां वरण भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्"। ४। ३। जिस प्रकार किसान अपने खेत में जल लाने के लिए केवल अपने खेत की मेंड काट कर पास की नहर के साथ उसे मिला देता है; ऐसा करने पर जिस प्रकार जल अपने वेग से आकर उपस्थित होता है उसी तरह जीवात्मा में सभी शक्तियाँ, पूर्णता और पवित्रता पहले से ही विद्यमान रहती हैं, केवल माया के आवरण के होने से वे प्रकाशित नहीं होतीं। एक वार इस आवरण के दूर होने पर आत्मा अपनी स्वाभाविक पवित्रता को प्राप्त करता है और उसकी शक्तियाँ जागृत हो उठती हैं। आपको याद रखना चाहिये कि प्राच्य और पाश्चात्य विचार प्रणाली में यही विशेष अन्तर है। पाश्चात्य विद्वान यह मत सिखलाते हैं कि हम सब लोग जन्म से ही पापी हैं। और जो इस भयानक मत पर विश्वास नहीं करते, उनके प्रति उनके मन में बहुत द्वेष भाव होता है। वे कभी इस बात पर विचार करके नहीं देखते कि यदि हम लोग स्वभावतः मन्द ही

हैं तो फिर हम लोगों के अच्छे होने की कोई आशा ही नहीं; क्योंकि प्रकृति कभी बदल नहीं सकती। प्रकृति में परिवर्तन, यह वाक्य अपना ही विरोधी हो जाता है—जिसका परिवर्तन होता है, उसे प्रकृति नहीं कहा जा सकता। यह विषय हम लोगों को याद रखना होगा। इस विषय में द्वैतवादी, अद्वैतवादी और भारत के सभी सम्प्रदाय एक मत हैं।

भारत के आधुनिक सभी सम्प्रदाय और एक विषय में एक मत हैं। वह यह है कि ईश्वर का अस्तित्व है। परन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में सभी सम्प्रदायों में भिन्न भिन्न धारणा हैं। द्वैतवादी सगुण, केवल सगुण ईश्वर में विश्वास रखते हैं। मैं इस सगुण के सम्बन्ध में कुछ और स्पष्ट करके बतलाना चाहता हूँ। इस सगुण शब्द कहने से देहधारी सिंहासनासीन, जगत् शासनकर्ता पुरुष विशेष से अभिप्राय नहीं है। सगुण का अर्थ गुणयुक्त है। शास्त्रों में इस सगुण ईश्वर का वर्णन कई स्थानों पर देखने में आता है। और सभी सम्प्रदाय इस जगत् के शासक, स्रष्टा; पालनकर्त्ता और संहर्ता स्वरूप सगुण को स्वीकार करते हैं। अद्वैतवादी इस सगुण ईश्वर के ऊपर ज्यादा विश्वास नहीं करते। वे इस सगुण ईश्वर से भी उच्चतर अवस्था विशेष में विश्वास रखते हैं, उसे सगुण निर्गुण नाम दिया जा सकता है। जिसका कोई गुण नहीं, उसे किसी विशेषण के द्वारा वर्णन करना असंभव है। और अद्वैतवादी उसके लिये सत् चित् आनन्द छोड़ कर और कोई विशेषण देने को तैयार नहीं। शंकर ने ईश्वर को सच्चिदानन्द

विशेषण दिया है किन्तु उपनिषदों में ऋषियों ने और ज्यादा बढ़ कर कहा है कि 'नेति नेति' अर्थात् यह नहीं, यह नहीं। जो हो सभी सम्प्रदाय ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने में एकमत है।

रामानुज का मत

यहाँ द्वैतवादियों के मत की थोड़ी आलोचना करूँगा। मैंने पहले ही कहा है कि मैं रामानुज को द्वैतवाद सम्प्रदाय का वर्तमान काल का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि स्वीकार करूँगा। यह बड़े ही दुःख की बात है कि बंगाल के लोग भारत और दूसरे प्रान्तों के धर्माचार्यों के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञान रखते हैं, और सम्पूर्ण मुसलमानी शासन काल में एक चैतन्य को छोड़ कर सभी बड़े बड़े धर्माचार्य ने दक्षिणात्य में जन्म लिया है। दक्षिणात्यवासियों का मस्तिष्क ही इस समय, वास्तव में, सम्पूर्ण भारत पर शासन कर रहा है। इसका कारण यह कि चैतन्य भी दक्षिणात्य के ही सम्प्रदाय में सम्मिलित थे। (माध्वाचार्य के सम्प्रदाय के थे)। जो हो, रामानुज के मत से तीन नित्य पदार्थ हैं, ईश्वर, जीवात्मा और जड़ प्रपंच। जीवात्मा नित्य है और सदा परमात्मा से उसका पार्थक्य रहेगा उसकी स्वाधीनता कभी नष्ट न होगी। रामानुज कहते हैं कि तुम्हारी आत्मा हमारी आत्मा से सदा पृथक् रहेगी। और यह जड़ प्रपंच—यह प्रकृति भी चिरकाल पृथक ही रहेगी। उनके मत से जीवात्मा और ईश्वर जैसे सत्य है, वैसे ही जड़ प्रपंच भी है। ईश्वर सब के अन्तर्यामी हैं और इस अर्थ में रामानुज ने स्थान स्थान पर परमात्मा को जीवात्मा

से अभिन्न—जीवात्मा का सार पदार्थ—कहा है। उनके मत से प्रलय काल में जिस समय सम्पूर्ण जगत् संकुचित हो जाता है, उस समय सारी जीवात्मायें भी संकुचित होकर कुछ दिन तक उसी दशा में रहती हैं। दूसरे कल्प के आरंभ में फिर बाहर आकर पहले कर्मों का फल भोगा करती हैं। रामानुज के मत से जिस कार्य के द्वारा आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता संकुचित होती है, वह असत् कर्म है और जिसके द्वारा उसका विकास होता है, वही सत् कर्म है। जो आत्मा के विकास में सहायता करता है, वह अच्छा है और जो उसके संकुचित होने में सहायता करता है, वही बुरा है। इस प्रकार आत्मा कभी संकुचित, कभी विकसित होता है, अन्त में ईश्वर की कृपा से मुक्ति पाता है। रामानुज ने यह भी कहा है कि जो शुद्ध भाव के हैं और ईश्वर कृपा के प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, वही उसे प्राप्त करते हैं।

श्रुति में एक प्रसिद्ध वाक्य है, "आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।" जब आहार शुद्ध होता है, तो सत्व भी शुद्ध होता है और सत्व के शुद्ध होने पर स्मृति अर्थात् ईश्वर स्मरण, (अथवा अद्वैतवादियों के मतानुसार अपनी पूर्णता की स्मृति) अचल और स्थायी होती है।" इस वाक्य को लेकर भाष्यकारों में बहुत मत भेद दिखलाई पड़ता है। पहली बात तो यह है कि इस सत्व शब्द का अर्थ क्या है। हम लोग जानते हैं कि सांख्य मतानुसार और भारतीय सभी सम्प्रदायों ने इस बात

को स्वीकार किया है कि यह देह सत्व, रजः और तमः इन तीन पदार्थों से बनी है। साधारण लोगों की यह धारणा है कि ये तीनों गुण है; किन्तु ऐसी बात नहीं, वे जगत के उपादान का कारण स्वरूप हैं। और आहार के शुद्ध होने पर यह सत्व पदार्थ निर्मल होगा। विशुद्ध सत्व प्राप्त करना ही वेदान्त का एक मात्र उद्देश्य है। मैं आप लोगों से पहले ही कह चुका हूँ कि जीवात्मा स्वभावतः पूर्ण और शुद्ध स्वरूप है और वेदान्त मत से वह रजः और तमः इन दोनों पदार्थों द्वारा आवृत है। सत्व पदार्थ अत्यन्त प्रकाश वाला होता है और जिस प्रकार प्रकाश सहज ही काँच को भेद कर जाता है, वैसे ही आत्म चैतन्य भी सहज ही सत्व पदार्थ को भेद कर जाता है। इसलिये अगर रजः और तमः के होने पर केवल सत्व पदार्थ ही रह जाय तो जीवात्मा की शक्ति और विशुद्धता प्रकट होगी और वह उस दशा में अधिक परिमाण में व्यक्त होगा। इसलिये उस सत्व को प्राप्त करना आवश्यक है। और श्रुति इस सत्व की प्राप्ति के लिये यह उपाय बतलाती है, कि "आहार शुद्ध होने पर सत्व शुद्ध होगा।" रामानुज ने इस आहार शब्द को खाद्य अर्थ में लिया है और इसे अपने दर्शन का एक प्रधान स्तम्भ रूप माना है। केवल यही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष के सभी सम्प्रदायों में इस मत का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इसलिये आहार शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है, इसी को विशेष करके समझना होगा। इसका कारण यह है

रामानुज और सत्वशुद्धि

कि रामानुज के मत से यह आहार शुद्धि हमारे जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक विषय है। रामानुज कहते हैं कि खाद्य पदार्थ तीन कारणों से अशुद्ध होता है। पहले जाति दोष से। खाद्य की जाति अर्थात् प्रकृति गत दोष। जैसे प्याज़, लहसुन आदि स्वभावतः अशुद्ध हैं। दूसरे आश्रय दोष-जिस व्यक्ति के हाथ से खाया जाता है उस व्यक्ति को आश्रय कहते हैं। अगर वह आदमी बुरा है तो वह खाद्य पदार्थ भी दूषित हो जायगा। मैंने भारतवर्ष में बहुत से ऐसे महात्मा देखें हैं, जो अपने जीवन में ठीक ठीक इस उपदेश के अनुसार कार्य कर गये हैं। अवश्य ही उनमें वैसी क्षमता थी। कौन व्यक्ति इस पदार्थ को लाया है, किसने इसे स्पर्श किया है, उनके गुण दोष को समझ जाते थे और मैंने अपने जीवन में एक बार नहीं सैकड़ों बार इसे प्रत्यक्ष किया है। तीसरा निमित्त दोष है—खाद्य पदार्थ में बाल, कीड़ा, मक्खी, गदंगी आदि के पड़ जाने से उसे खाद्य पदार्थ का निमित्त दोष कहते हैं। हम लोगों को इस अन्तिम दोष को हटाने का प्रयत्न करना होगा। भारत में आहार में यह दोष विशेष रूप से घुस गया है। इस त्रिविध दोष रहित खाद्य पदार्थ को खाने से सत्व की शुद्धि होगी।

तब तो यह धर्म बहुत आसान और सीधा सादा हुआ! अगर शुद्ध खाद्य पदार्थ को खाने से ही धर्म होता है, तो सभी ऐसा कर सकते हैं। संसार में कौन सा कमज़ोर और असमर्थ मनुष्य होगा जो अपने को इन दोषों से मुक्त नहीं कर सकता। इस-

लिये यह देखना चाहिये कि शंकराचार्य ने इस आहार शब्द का क्या अर्थ किया है। शंकराचार्य कहते हैं कि आहार शब्द का अर्थ है इन्द्रिय द्वार से मन में जो विचार एकत्रित होते हैं। उनके निर्मल होने से सत्व निर्मल होंगे, इसके पहले नहीं। तुम जो चाहो, खा सकते हो। यदि पवित्र भोजन के द्वारा सत्व की शुद्धि होता वानर को ज़िन्दगी भर दूध भात खिला कर क्यों नहीं देखते कि वह बड़ा योगी होता है या नहीं। अगर ऐसा होता है तो गाय, हरिण आदि सभी पहले बड़े भारी योगी हुए होते।

शंकर और आहार शुद्धि

> नित्य नहाये हरि मिले, तो जल जन्तू होइ।
> फल मुल खाके हरि मिले तो बादुर बन्दर होइ।
> तृन चरे से हरि मिले तो बहुत मृगी अजा।
>
> आदि।

जो हो, इस समस्या की मीमांसा क्या है? दोनों आवश्यक है। यह ठीक है कि शंकर ने आहार शब्द का जो अर्थ किया है, वही मुख्य अर्थ है, तो भी यह सत्य है कि शुद्ध भोजन करने से शुद्ध विचार में सहायता मिलती है। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों चाहिये। तो भी गड़बड़ी यह हो रही है कि वर्तमान काल में हम लोग शंकराचार्य के उपदेश को भूल कर केवल 'खाद्य' अर्थ लेते हैं। इसी कारण जब मैं कहता हूँ कि धर्म चूल्हे-चौके

में घुस पड़ा है तो लोग, मेरे विरुद्ध हो जाते हैं किन्तु आप लोग मेरे साथ मद्रास चलें तो आप लोग भी मुझसे सहमत हो जांयगे। आप बंगाली लोग उनसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। मद्रास की ओर यदि कोई इतर जाति का उच्चवर्ण के भोजन की ओर निगाह डाले तो वे उस खाद्य पदार्थ को फेंक देंगे। किन्तु वहाँ के लोगों ने खान पान में इतना विचार रखने पर भी कोई विशेष उन्नति करली हो, सो तो हम लोगों के देखने में नहीं आता। अगर केवल अमुक पदार्थ का खाना छोड़ने ही से, और उसे दृष्टि दोष से बचाने ही से लोग सिद्ध पुरुष होते तो मद्रासी लोग बहुत सिद्ध पुरुष होते, किन्तु ऐसी बात नहीं। यहाँ पर हम लोगों के सामने जो कई एक मद्रासी मित्र बैठे हुए हैं, उनकी बात को छोड़ कर मैं यह बात कह रहा हूँ। उनकी बात ही दूसरी है।

इसलिये यद्यपि आहार के सम्बन्ध में इन दोनों मतों को मिलाने से एक पूर्ण सिद्धान्त स्थिर होता है, तो भी "उल्टा बुझली राम" न करना। आजकल इस खान पान को लेकर भी वर्णाश्रम में खूब चखचख चल रही है। और इस विषय को लेकर सब से ज्यादा बंगाली लोग चिल्ला रहे हैं। मैं आप लोगों में से प्रत्येक से पूछता हूँ कि आप लोग इस वर्णाश्रम के सम्बन्ध में क्या जानते हैं। इस समय इस देश में वह चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कहाँ पर है ? मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये। मुझे तो कहीं पर भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था दिखलाई नहीं पड़ती। जैसे कहते हैं। "सिर तो

नहीं है सिर में पीड़ा, "यहाँ पर आपके वर्णाश्रम धर्म के प्रचार की चेष्टा भी वैसी ही है। यहाँ पर चार वर्ण नहीं हैं। यहाँ पर मैं केवल ब्राह्मण और शूद्र जाति देखता हूँ। यदि क्षत्रिय और वैश्य जाति है, तो वे कहाँ पर हैं और हिन्दू धर्म के नियमानुसार ब्राह्मण लोग क्यों नहीं उन्हें यज्ञोपवीत धारण कर वेद पढ़ने का आदेश करते और यदि इस देश में क्षत्रिय वैश्य नहीं हैं, अगर केवल ब्राह्मण और शूद्र ही हैं, तो शास्त्रानुसार जिस देश में केवल शूद्र ही रहें, वैसे देश में ब्राह्मण को रहना उचित नहीं। इसलिये आप लोगों को बोरिया-बिस्तर बाँध कर इस देश से चले जाना चाहिये। जो लोग म्लेच्छों का खाद्य पदार्थ खाते हैं और म्लेच्छों के राज्य में निवास करते हैं, उनके सम्बन्ध में शास्त्र क्या कहते हैं, इसे आप लोग जानते हैं ? आप लोग पिछले हज़ार वर्षों से यही करते आ रहे हैं। इसका प्रायश्चित क्या है, इसे क्या आप लोग जानते हैं ? इसका प्रायश्चित है जलती चिता में प्रवेश करना। आप लोग आसन तो ग्रहण करना चाहते हैं आचार्यों का, तो काम ढोंगियों का सा क्यों करते हैं ? अगर आप लोगों को अपने शास्त्रों पर विश्वास है तो आप लोग भी उस ब्राह्मणवर्य की तरह होजाइये जो सम्राट सिकन्दर के साथ यूनान देश में गया था और म्लेच्छ का आहार करने के बाद जलती चिता में प्रवेश कर गया था। ऐसा करके देखिये। उस समय सारी जाति आकर आपके पैरों पर पड़ेगी।

आप लोग स्वयं अपने शास्त्रों पर विश्वास नहीं रखते, परन्तु दूसरे को विश्वास कराने चलते हैं। और अगर आप यह समझते हैं कि इस युग में वैसा कठोर प्रायश्चित करने का आप में सामर्थ्य नहीं है तो आप लोग अपनी कमज़ोरी स्वीकार कीजिये और दूसरे की कमज़ोरी को क्षमा कीजिये। और दूसरी जातियों की यथाशक्ति सहायता कीजिये, उन्हें वेद पढ़ने दीजिये। हे वंग देश के ब्राह्मणों, मैं आप लोगों को विशेष सम्बोधन करके कहता हूँ, आप लोग असली आर्य बनिये।

जो जघन्य वामाचार आपके देश का सत्यानाश कर रहा है, उसे छोड़ दीजिये। आप लोगों ने भारतवर्ष के और और स्थानों को देखा नहीं है। जिस समय मैं अपने देश में आता हूँ, उसका पहले के ज्ञान की चाहे जितनी बड़ाई क्यों न हो, जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज में वामाचार किस क़दर समा गया है तो मुझे वह अत्यन्त घृणित नरक के समान स्थान जान पड़ता है। यह वाममार्गियों का सम्प्रदाय हमारे बंगाल प्रान्त के समाज को ढक लिया है। और जो रात में अत्यन्त वीभत्स लम्पटता के कार्य में लीन रहते हैं, वे ही दिन में आचार के सम्बन्ध में ऊँचे स्वर में प्रचार करते हैं और अत्यन्त बड़े-बड़े ग्रंथ उनके कार्य के समर्थक हैं। अपने शास्त्रों के आदेशानुसार वे इस प्रकार के वीभत्स कार्य करते हैं! बंगाल प्रान्त के रहनेवाले आप सब लोग इन बातों को जानते हैं। वामाचार का उपदेश

वामाचार

करने वाले सभी तन्त्र बंगालियों के शास्त्र हैं। इन तंत्रों के ढेर के ढेर प्रकाशित होते हैं और वेदों की शिक्षा के बदले उनकी आलोचना से आप लोगों के लड़के लड़कियों के चित्त कलुषित होते हैं। हे कलकत्ता शहर के रहने वाले भद्र पुरुषो! क्या आप लोगों को लज्जा नहीं आती कि यह अनुवाद सहित वामाचार तंत्र जैसे भयानक वस्तु आप लोगों के लड़के लड़कियों के हाथों में पड़कर उनके चित्त को खराब करते हैं और लड़कपन ही से इन्हें हिन्दुओं का शास्त्र कह कर उनकी शिक्षा दी जाती है। अगर हो सके तो उनके हाथों सें उन ग्रन्थों को छीनकर असल शास्त्र-वेद-उपनिषद, गीता पढ़ने को दो।

भारत के द्वैतवाद के मतानुसार जीवात्मा चिरकाल तक जीवात्मा ही रहेगा। ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है, उन्होंने पहले ही अवस्थित उपादान कारण से जगत् द्वैत तथा अद्वैत की सृष्टि की है। लेकिन अद्वैतवादियों के मत से सृष्टि तत्व मतानुसार ईश्वर जगत् का निमित्त और उपादान कारण दोनों हैं, वह केवल संसार का सृष्टि-कर्त्ता नहीं है, किन्तु उसने उपादान भूत अपने से उसकी सृष्टि की है। यही अद्वैतवादियों का मत है। बहुत से लम्बे चौड़े नामधारी द्वैतवादी सम्प्रदाय हैं, उनका विश्वास है कि ईश्वर ने अपने से इस संसार की सृष्टि की है और वह जगत से सदा पृथक रहता है। और सभी उस जगत् पति के सदा अधीन रहते हैं। फिर बहुत से सम्प्रदाय हैं जिनका

यह मत है कि ईश्वर ने अपने को उपादान करके इस संसार की उत्पत्ति की है और जीव काल पाकर शान्त भाव परित्याग अनन्तता प्राप्त करेगा। लेकिन इस समय इन सभी सम्प्रदायों का लोप हो गया है। आजकल भारतवर्ष में अद्वैतवादी नामक जो सम्प्रदाय है, वह शंकर का अनुयायी है। शंकर के मतानुसार ईश्वर माया के अधीन होकर ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण होता है, वास्तव में नहीं। ईश्वर ही यह संसार हो जाता है। यह बात नहीं, किन्तु वास्तव में जगत् नहीं है, ईश्वर ही है।

अद्वैत वेदान्त का यह मायावाद समझना विशेष कठिन है। इस वक्तृता में हमारे दर्शन के इस कठिन समस्या की आलोचना करने का समय नहीं है। आप लोगों में से जो पाश्चात्य दर्शन शास्त्रों से परिचित हैं, उन्होंने कांट के दर्शन में कितने तरह के मत देखे होंगे। तो भी आप लोगों में से जिन्होंने कांट के सम्बन्ध में अध्यापक मैक्समूलर के लेख में पढ़े हैं उन्हें सावधान करता हूँ कि उनके लेख में एक ज़बर्दस्त भूल है। उक्त अध्यापक के मतानुसार देशकाल-निमित्त हमारे तत्वज्ञान का प्रतिबन्धक है, उसे पहले पहल काण्ट ने ही आविष्कार किया है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं। शंकराचार्य ही इसके पहले आविष्कर्ता हैं। उन्होंने देशकाल निमित्त को माया के साथ अभिन्न भाव से वर्णन किया है। सौभाग्य से शंकर भाष्य के भीतर मैंने इस भाव के दो एक स्थल देखकर अध्यापक मैक्समूलर

को भेज दिया। इसलिए मैं देखता हूँ कि काण्ट से पहले भी यह तत्व भारतवासियों को अज्ञात न था। अद्वैत वेदान्तियों का मायावाद का सिद्धान्त एक अपूर्व वस्तु है। उनके मत से सब कुछ ब्रह्म ही है। भेद माया के कारण दिखलाई पड़ता है।

यही एकत्व, 'यही एकमेवाद्वितीयम्' ब्रह्म ही हम लोगों का परम लक्ष्य है। और यहीं पर भारतीय और पाश्चात्य विचार

में मतभेद उपस्थित होता है। हज़ारों वर्षों

सभी माया त्याग से सम्पूर्ण संसार के सन्मुख इस मायावाद की

या वैराग्य घोषणा करके उन्हें ललकारा है कि यदि किसी

में सामर्थ्य है तो उसे खण्डन करें। इस ललकार को सुनकर संसार की भिन्न-भिन्न जातियाँ भारतीय मत के प्रतिवाद करने को आगे बढ़ीं, किन्तु उसका फल यह हुआ है कि वे मर गईं और हम लोग आज भी जीते हैं। भारत ने सारे संसार के समक्ष घोषणा की है कि सभी भ्रान्ति से पूर्ण माया मात्र है। चाहे मिट्टी के बर्तन में भात खाओ, चाहे सोने के पात्र में भोजन करो, महाराजाधिराज बनो या दरिद्र भिक्षुक हो, मृत्यु ही एक मात्र परिणाम है। सभी की वही एक गति होती है। सभी माया का खेल है। यही भारत की अत्यन्त प्राचीन कथा है। बार बार कई जातियों ने उठकर उसे खंडन करने, उसके विरुद्ध प्रमाण देने की चेष्टा की है। उन्होंने उन्नति करके स्वयं अपने हाथों में सारी क्षमता ले ली है,

भोग को ही अपना मूल मंत्र बना लिया है। उन्होंने यथाशक्ति उस क्षमता को बढ़ाया है, जहाँ तक हो सका है भोग किया है; परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी मृत्यु हुई है। हम लोग चिरकाल से बेखटके चले आ रहे हैं, इसका कारण माया है। महामाया की सन्तान चिरकाल तक बची रहती है, किन्तु अविद्या की सन्तान की आयु अल्प होती है।

यहाँ पर और एक विषय में प्राच्य और पाश्चात्य विचारों में विशेष मतभेद है। प्राचीन भारत में भी हेगेल और शोपेनहार नामक जर्मन दार्शनिक विद्वानों के मत की तरह मतवाद का विकास देखने में आता है। किन्तु हमारे सौभाग्य से हेगले का सा मतवाद यहाँ पर बीजावस्था में ही नष्ट हो गया था, उससे अंकुर निकलकर वृक्ष के रूप में परिणत होकर उसके नाशकारी शाखाओं, प्रशाखाओं के फैलने की इस देश में नौबत ही नहीं आई। हेगेल का वास्त-

वेदान्त और हेगेल दर्शन के मूल भेद-वेदान्त वैराग्यवादी, हेगेल भोगवादी

विक मत यह है कि उस एक निरपेक्ष सत्ता से कुहरे से परिपूर्ण, विशृंखलता युक्त और साकार व्यष्टि श्रेष्ठ है। अर्थात् अजगत् से जगत् श्रेष्ठ है, मुक्ति से संसार श्रेष्ठ है। यही हेगेल का असली सिद्धान्त है। इसलिये उसके मतानुसार तुम जितने ही संसार समुद्र में गोता लगाओगे, तुम्हारी आत्मा जितना ही जीवन के विभिन्न कर्म जाल में फँसी रहेगी, उतने ही तुम उन्नत होगे! पाश्चात्य देशवासी कहते हैं कि क्या तुम देखते नहीं हो कि हम

लोग कैसी कैसी इमारतें बनाते हैं, कैसा रास्ता साफ़ रखते हैं, किस तरह इन्द्रियों का विषय भोगते हैं। इसके पीछे—प्रत्येक इन्द्रिय भोग के पीछे,—घोर दुःख यन्त्रणा पैशाचिकता, घृणा विद्वेष छिपे हुए हैं, इससे कोई हानि नहीं।

दूसरी ओर हमारे देश के दार्शनिकों ने पहले ही से घोषणा की है कि प्रत्येक अभिव्यक्ति, जिसको आप लोग क्रम विकास कहते हैं, वह उसी अव्यक्त का अपने को व्यक्त करने की व्यर्थ चेष्टा मात्र है। इस जगत् का सर्वशक्तिमान कारण स्वरूप तुम हो।

तुम्हीं अपने को छोटी से बावली में प्रतिबिम्बित करने की व्यर्थ चेष्टा करते हो! कुछ दिन तक चेष्टा करने पर तुम देखोगे कि यह असमंव है उस समय जहाँ से आये थे, दौड़कर वहीं पर लौटने की चेष्टा करनी होगी। यही वैराग्य है—इस वैराग्य के आविर्भाव होने से ही धर्मसाधन का सूत्रपात होगा। त्याग को छोड़कर किस तरह धर्म का, नीति का सूत्रपात हो सकता है? त्याग ही धर्म का आरम्भ है, त्याग ही उसकी समाप्ति है। वेद कहते हैं कि "त्याग करो, त्याग करो, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।"

"न प्रजया धनेन न चेज्यया त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।"

सन्तान द्वारा नहीं, धन के द्वारा नहीं, यज्ञ के द्वारा नहीं, एक मात्र त्याग के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।"

यही सभी भारतीय शास्त्रों का आदेश है। यद्यपि बहुत से लोग राजसिंहासन पर बैठ कर भी महात्यागी का जीवन दिखला गये हैं, किन्तु जनक को भी कुछ दिन के लिये संसार के साथ सम्बंध एकदम परित्याग करना पड़ा था, और उनकी अपेक्षा और कौन बड़ा त्यागी था? लेकिन आजकल हम सब लोग जनक कहलाना चाहते हैं। वे जनक हैं

कलि के जनक

अवश्य, किन्तु कितने अभागे लड़के लड़कियों के जनक मात्र हैं, जो उनके पेट भर खाने पीने और कपड़े की भी व्यवस्था नहीं कर सकते। यहीं तक उनका जनकत्व है, पूर्वकाल के जनक की तरह उनमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है। हमारे आजकल के जनकों के यही भाव हैं। इस समय जनक होने का प्रयत्न छोड़कर सीधे रास्ते से चलो। यदि त्याग कर सकोगे, तभी तुमसे धर्म पालन होगा। अगर न हो सकेगा तो तुम प्राच्य से पाश्चात्य देश तक सारी दुनिया में जितने पुस्तकालय हैं, उनके सभी ग्रंथ पढ़कर दिग्गज पंडित हो सकते हो किन्तु तुम्हारे भीतर अगर यह कर्मकाण्ड रहेगा तो तुमसे कुछ न होगा, तुम्हारे भीतर धर्म का विकास कुछ भी न होगा।

केवल त्याग के द्वारा ही इस अमृतत्व को प्राप्त कर सकते हो, त्याग में ही अपूर्व शक्ति है। जिसके भीतर यह महाशक्ति उत्पन्न होती है, वह सारे संसार की परवा नहीं करता। उस समय उसके सामने सारा संसार गोपद के समान जान पड़ता है—"ब्रह्माण्ड गोष्पदायते।" त्याग ही भारत की सनातन

पताका है। इस पताका को सारे संसार में उड़ाकर, जो जातियाँ मरने को बैठी हैं, भारत उन्हें सावधान किये देता है कि सब तरह के अत्याचार, सब प्रकार की अभद्रता का वह तीव्र प्रतिवाद करता है। उनसे मानो कहता है कि त्याग का मार्ग, शान्ति का पथ अवलम्बन करो, नहीं तो मर जाओगे। ऐ हिन्दुओ, इस त्याग के झण्डे को मत छोड़ो, इसे सब के सामने फहराते रहो। अगर तुम कमज़ोर दिल के हो और त्याग नहीं कर सकते तो अपने आदर्श को न बिगाड़ो। यह साफ़ साफ़ कह दो कि मैं संसार में त्याग नहीं कर सकता, किन्तु कपट का भाव न दिखलाओ,—शास्त्र का विकृत अर्थ करके चिकनी-चुपड़ी दलीलें देकर लोगों की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न न करो। जो लोग इस तरह की दलीलों पर मुग्ध हो जाँय उन्हें भी उचित है कि अपने शास्त्रों के असली अर्थ जानने का प्रयत्न करें। जो हो, इस तरह का छल-कपट न करो, कह दो कि मैं दुर्बल हूँ। इसका कारण यह है कि यह त्याग बड़ा भारी महान् आदर्श है। अगर युद्ध में लाखों सिपाहियों की मृत्यु हो, और दस, दो अथवा एक ही सिपाही विजयी होकर लौट आवे, तो इसमें हानि ही क्या है?

त्याग को ही अपना आदर्श बनाना पड़ेगा

लड़ाई के मैदान में जो लाखों मनुष्य मारे जाते हैं, वे धन्य होते हैं क्योंकि उन्हीं के खून के मूल्य विजय खरीदी जाती है।

एक को छोड़कर भारत के और और वैदिक सम्प्रदाय इस त्याग
को ही अपना मुख्य आदर्श माना है। बम्बई
त्याग के श्रेष्ठ प्रान्त का केवल वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय उसे
आदर्श को जातीय नहीं मानता। और आप लोगों में से बहुत
जीवन में प्रतिष्ठित से लोग समझते होंगे कि जहाँ पर त्याग नहीं,
करने के लिये झूठे वहाँ पर अन्त में क्या रहता है। इस त्याग
सन्यासी को भी के आदर्श की रक्षा करने में अगर धर्मान्धता
मानना होगा भी करना पड़े, भस्म रमाये उर्ध्व बाहु जटाजूट
धारियों को आश्रय देना पड़े, वह भी अच्छा
क्योंकि, यद्यपि यह सब अस्वाभाविक है, तो भी मनुष्यता का
नाश करनेवाली जो विलासिता भारत में प्रवेश करके हम लोगों
की मांस मज्जा तक को सुखाने की चेष्टा कर रही है, और सारी
भारतीय जाति को कपटी और छलिया बना रही है, उस विला-
सिता के स्थान में त्याग का आदर्श रखकर सम्पूर्ण जाति को
सावधान करने के लिये इसकी आवश्यकता है। हम लोगों को
त्याग का अवलम्बन करना ही पड़ेगा। प्राचीन काल में इसी
त्याग ने समूचे भारत को विजयी बनाया था, इस समय भी यह
त्याग ही फिर से भारत को विजयी बनायेगा। यह त्याग ही
अब भी भारतीय सभी आदर्शों में श्रेष्ठ और उच्च है। महात्मा
बुद्ध, भगवान रामानुज, परमहंस रामकृष्ण देव की जन्म-भूमि,
त्याग की लीलाभूमि यह भारत जहाँ पर अत्यन्त प्राचीन काल
से कर्म कांड का प्रतिपादन चल रहा है, वहाँ पर अब भी सैकड़ों

व्यक्ति सर्वस्व त्याग करके जीवन् मुक्त हुए है, वह देश इस समय अपने आदर्शों को क्या तिलांजलि देगा ? कभी नहीं। यह हो सकता है कि पाश्चात्य विलासिता के आदर्श से कितने लोगों के दिमाग फिर गये हैं, यह भी संभव है कि हज़ारों मनुष्य इस इन्द्रिय भोग रूपी पाश्चात्य विष को खूब गले भरतक पी गये है, तो भी हमारी मातृभूमि में हज़ारों व्यक्ति निश्चित रूप से हैं, जिनके सम्मुख धर्म केवल कहने भर के लिये न रहेगा, जो आवश्यकता पड़ने पर परिणाम का विचार न कर सर्वस्व त्याग करने को तैयार रहेंगे।

और एक विषय पर जिन पर हमारे सभी सम्प्रदाय एकमत हैं, उन्हें मैं आप लोगों के सामने कहने की इच्छा करता हूँ। यह भी एक बड़ा भारी विषय है। यह भाव भारत की विशेष सम्पत्ति है—यह है कि धर्म को साक्षात् करना होगा।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो।
न मेधया न बहुना श्रुतेन।

"अधिक बकबक करने अथवा केवल बुद्धि बल से या अनेक शास्त्रों के पाठ से इस आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

केवल यही नहीं, संसार में एकमात्र हम लोगों के शास्त्र ही घोषणा करते हैं कि शास्त्रों के पाठ द्वारा भी आत्मा को नहीं प्राप्त किया जा सकता, फजूल बोलने या वक्तृता द्वारा

भी आत्मलाभ नहीं होता, उसे प्रत्यक्ष अनुभव करना होगा।

प्रत्यक्ष अनुभूति ही धर्म है।

यह गुरु के द्वारा शिष्य में आता है। शिष्य को जिस समय अन्त-र्दृष्टि होती है, उस समय उसके सामने सभी कुछ साफ हो जाता है, उस समय वह साक्षात् आत्मोपलब्धि करता है। और एक बात है। बंगाल में एक विचित्र प्रथा दिखलाई पड़ती है उसका नाम कुलगुरु प्रथा है। मेरे पिता तुम्हारे गुरु थे—इस समय मैं तुम्हारा गुरु हूँगा। मेरे पिता तुम्हारे पिता के गुरु थे,

कुलगुरु प्रथा

इसलिये मैं भी तुम्हारा गुरु हूँगा। गुरु किसे कहते हैं? इस सम्बन्ध में प्राचीन वैदिक मत की आलोचना करें। जो वेदों का रहस्य जानते हैं—ग्रन्थकीट, वैयाकरण या साधारण पंडित गुरु होने योग्य नहीं,—किन्तु जो यथार्थ में वेदों का तात्पर्य जानते हैं वे ही योग्य हैं।

यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य

जिस प्रकार चन्दन ढोनेवाला गदहा चन्दन के भार को ही जानता है, किन्तु चन्दन के गुण से परिचित नहीं होता।"

ये पंडित भी वैसे ही हैं। इनके द्वारा हम लोगों का कोई कार्य नहीं हो सकता। वे यदि प्रत्यक्ष अनुभव न कर सके तो वे क्या सिखलायँगे? लड़कपन में मैं इस कलकत्ता शहर में जहाँ तहाँ घूमा करता था, और बड़ी बड़ी वक्तृतायें सुनने पर वक्ता से पूछा करता था कि क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है?

ईश्वर दर्शन की बात सुनते ही वह आदमी चौंक उठता; केवल रामकृष्ण परमहंस ही ने मुझसे कहा कि मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। केवल यहीं नहीं, उन्होंने यह भी कहा था, कि मैं तुमको ईश्वर दर्शन करने का मार्ग दिखला दूँगा। शास्त्रों के ठीक ठीक अर्थ भर कर लेने से ही कोई असली गुरु को प्राप्त नहीं कर सकता।

'वागैश्वरी शब्द झरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम्।
वैद्युष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।"

"नाना शास्त्रों के व्याख्या करने का कौशल केवल पंडितों के आमोद के लिये है, मुक्ति के लिये नहीं।"

'श्रोत्रिय—जो वेद के रहस्य को जानने वाले, निष्पाप, काम-रहित है—जो तुम्हें उपदेश देकर धन संग्रह की कामना नहीं रखते, वे ही शान्त, साधु हैं। वसन्त ऋतु में जिस प्रकार वृक्षों पर पत्ते और कलियाँ निकलती हैं और वह जैसे वृक्ष से उस उपकार के वदले प्रत्युपकार नहीं चाहते, क्योंकि उनकी प्रकृति ही दूसरे का हितसाधन करना है। दूसरे का हित करो, किन्तु उसके वदले दान-स्वरूप कुछ न चाहो।!असली गुरु ऐसे ही होते हैं।

तीर्णाः स्वयं भीम भवार्णवं जनाः
अहेतुनान्यानपि तारयन्तुः।

"वे स्वयं भयानक जीवन रूपी समुद्र को पार कर गये हैं और स्वयं लाभ की आशा न रख दूसरे को भी तारते हैं।"

इसी प्रकार के व्यक्ति ही गुरु हैं, दूसरे लोग कभी गुरु नहीं हो सकते। क्योंकि

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितं मन्यमानाः

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः अन्धे नैव नीयमाना यथान्धाः

—कठ २।५।

"स्वयं अन्धकार में डूबे हुए हैं, किन्तु अहंकार के वशीभूत हो यह समझता है कि वह सब कुछ जानता है। वह केवल यही समझकर निश्चिन्त नहीं हो जाता, वह दूसरे की सहायता करने को जाता है। वह तरह तरह के बुरे मार्ग में भटकता रहता है। इस प्रकार अन्धे द्वारा लाये हुए अन्धे के समान दोनों गड्ढे में गिर पड़ते हैं।"

तुम्हारे वेद भी यही बात कहते हैं। इस वाक्य के साथ अपने आधुनिक प्रथाओं की तुलना करो। आप लोग वेदान्तिक हैं, सच्चे हिन्दू हैं, सनातन मार्ग के पक्षपाती हैं। आप लोग जितने ही सनातन मार्ग के अधिक पक्षपाती होंगे, उतने ही बुद्धिमानों की तरह कार्य करेंगे और जितने ही आजकल की धर्मान्धता का अनुसरण करेंगे, उतने ही मूर्खों की तरह कार्य करेंगे। आप लोग उसी सनातन मार्ग का अवलम्बन कीजिये। क्योंकि उस समय के शास्त्रों की प्रत्येक वाणी वीर्यवान, स्थिर, अकपट हृदय से निकली है, उसका प्रत्येक सुर अमोघ है। इसके बाद जातीय

मैं आप लोगों को सनातन मार्ग का अधिक पक्षपाती बनाना चाहता हूँ

अवनति का युग आया, शिल्प, विज्ञान, धर्म सभी विषयों में ही अवनति हुई। उनके कारणों के खोजबीन का समय नहीं है, किन्तु उस समय की लिखी हुई सभी पुस्तकों में इस जाति की व्याधि, जातीय अवनति का प्रमाण पाया जाता है। जातीय बल के बदले उनमें केवल रोदन ध्वनि है। जाओ, जाओ, उस प्राचीन काल के भाव को ले आओ, जिस समय जातीय शरीर में वीर्य और जीवन था। आप लोग फिर से वीर्यवान बनिये, इस प्राचीन झरने के जल को खूब पेट भर पिओ। इसके अतिरिक्त भारत के उद्धार का और दूसरा उपाय नहीं है।

दूसरे विषय की आलोचना करने में प्रस्तुत विषय को एक तरह से भूल ही गया था। यह विषय बहुत बड़ा है और मुझे आप लोगों से इतना कहना है कि मैं सब भूल जाता हूँ। जो हो, अद्वैतवाद के मत से हम लोगों का जो यह व्यक्तित्व है, वह भ्रम मात्र है। सारे संसार के लिये इस बात को समझना कठिन है। जिस समय आप किसी से कहेंगे कि वह 'व्यक्ति' नहीं, वह इस बात से इतना डर जायगा कि वह यह समझने लगेगा कि मेरा अहंभाव वह चाहे जो कुछ भी क्यों न हो नष्ट हो जायगा।

अहं भाव लोप होने का तात्पर्य

किन्तु अद्वैतवादी कहते हैं कि वास्तव में तुममें अहंभाव है ही नहीं। अपने जीवन के प्रतिक्षण में तुम्हारा परिवर्तन हो रहा है। तुम एक समय बालक थे, उस समय तुम एक तरह से सोचते विचारते थे, इस समय तुम युवक हो, इस समय एक तरह से सोचते हो। सभी

का परिणाम होता है। यदि यही होता है, तो फिर तुम्हारा अहं भाव कहाँ रहा? यह अहं भाव या व्यक्तित्व न तो दैहिक है, न मानसिक। तुम्हारी आत्मा इस देह और मन के परे है और अद्वैतवादी कहते हैं कि यह आत्मा ब्रह्म स्वरूप है। दो अनन्त कभी रह नहीं सकते। एक ही व्यक्ति हैं, वह अनन्त स्वरूप हैं।

सीधे सादे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हम लोग विचारशील प्राणी हैं। हम लोग सभी वस्तुओं पर विचार करके समझना चाहते हैं। अब यह देखना चाहिये कि विचार या युक्ति किसे कहते हैं?—युक्ति या विचार का अर्थ है—क्रमशः पदार्थों के समूह को उच्च श्रेणियों में बाँटकर अन्त में एक ऐसे स्थान पर पहुँचाना जिसके ऊपर और जानना हो सके। ससीम वस्तु को यदि अनन्त के पर्यायवुक्त किया जा सके तभी उसको चिर विश्राम होता है। एक ससीम वस्तु को लेकर उसके कारण का अनुसंधान करो, लेकिन जब तक चरम अर्थात् अनन्त को पहुँच न जाओ, तब तक कहीं पर शान्ति न पाओगे। और अद्वैतवादी कहते हैं कि इस अनन्त वास्तविक विचार का ही एक मात्र अस्तित्व है। और सब माया है, क्या है और उसका और किसी को सत्ता नहीं है। जो कोई जड़ वा

परिणाम

चेतन पदार्थ है, उसका जो यथार्थ रूप है, वह वही ब्रह्म है। हम लोग यह ब्रह्म हैं और नाम रूप आदि जो कुछ है, सभी माया है। इस नाम रूप को हटा दो-ऐसा करने पर तुम्हारे हमारे बीच में कोई भेद नहीं रहेगा। किन्तु हम

लोगों को इस 'अहम्' शब्द को अच्छी तरह से समझना होगा। साधारणतः लोग समझते हैं कि यदि हम ब्रह्म ही हैं तो हम मन-मानी क्यों न करें? लेकिन यहाँ पर यह 'अहं' शब्द और अर्थ में व्यवहृत होता है। तुम जब अपने को बद्ध समझते हो, उस समय तुम आत्म स्वरूप ब्रह्म नहीं हो, जिनका कोई अभाव न हो जो अन्तर्ज्योति हैं। जो अनन्तारास हैं, आत्म तृप्त है, उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं है, न उन्हें कोई कामना है। वह बिल्कुल निर्भय और पूर्ण स्वाधीन है। वही ब्रह्म है। उस ब्रह्म स्वरूप में हम सब लोग एक हैं।

इसलिए द्वैतवाद और अद्वैतवाद में एक ही अन्तर जान पड़ता है। आप लोग देखेंगे कि शंकराचार्य जैसे बड़े बड़े भाष्यकारों ने भी अपने अपने मत को पुष्ट करने के लिये स्थल स्थल पर शास्त्रों का ऐसा अर्थ किया है कि जो मेरे मन में समीचीन नहीं जान पड़ता। रामानुज ने भी इस तरह शास्त्रों का अर्थ किया है कि जो स्पष्ट समझ में नहीं आता। हमारे

मत में अन्तर—श्री रामकृष्ण के जीवन में दोनों मतों का समन्वय

द्वैत और अद्वैत पंडितों में भी यह धारणा देखने में आती है कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में केवल एक ही सत्य हो सकता है और सभी मिथ्या हैं। यद्यपि उन्होंने श्रुतियों तक से इस तत्त्व को पाया है (जो अद्भुत तत्त्व भारत को अब भी संसार को सिखलाना पड़ेगा) कि एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति,—प्रकृत सत्ता एक ही है। महात्माओं ने उसी को अनेक

रूपों में वर्णन किया है। यही हम लोगों के जातीय जीवन का मूल मंत्र है और इसी मूल मंत्र को कार्य रूप में परिणत करना ही हमारी जाति की जीवन समस्या है। भारत के कई पंडितों के—मेरा पंडित कहने से अभिप्राय वास्तविक धार्मिक और ज्ञानी पुरुष से है—अतिरिक्त और सब लोग उस तत्व को भूल गये। हम लोग इस महान् तत्व को सदा भूल जाते हैं। आप लोग देखेंगे कि अधिकांश पंडितों का—सैकड़ा पीछे ६८ का मत है कि अद्वैतवाद सत्य है, न तो विशिष्टाद्वैतवाद सच्चा है न द्वैतवाद ही। अगर आप बनारस में पाँच मिनट के लिये भी किसी घाट पर जाकर बैठिये तो आप मेरी बात को सच पावेंगे। आप देखेंगे कि इन सभी सम्प्रदायों और मतों में खासी बहस हो रही है। हमारे समाज और पंडितों की यह दशा है। इन भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के कलह के भीतर एक ऐसे मनुष्य ने जन्म लिया है जिसने भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के भीतर जो सामञ्जस्य है—उस सामञ्जस्य को कार्य रूप में परिणत करके अपने जीवन में दिखला दिया था। मैं रामकृष्ण परमहंस को लक्ष्य करके यह कह रहा हूँ। उनके जीवन की अलोचना करने ही से जान पड़ता है कि ये दोनों मत ही आवश्यक हैं। वे गणित ज्योतिष के भूकेन्द्रिक (Geocentric) और सूर्यकेन्द्रिक (Helio centric) मत के से हैं। लड़के को जब पहले पहल ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है तो उसे इस भूकेन्द्रिक मत की ही शिक्षा दी जाती है, किन्तु जिस समय वह ज्योतिष के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों का अध्ययन करने

लगता है तो उस समय इस सूर्यकेन्द्रिक मत को पढ़ना आवश्यक होता है। उस समय वह ज्योतिष के तत्वों को पहले से भी अच्छी तरह समझ पाता है। पाँचों इन्द्रियों से आवद्ध यह जीव स्वभावतः द्वैतवादी होता है जितने दिन तक हम लोग पञ्चेन्द्रियों द्वारा आवद्ध हैं, उतने दिन तक हम लोग सगुण ईश्वर का दर्शन करेंगे—सगुण ईश्वर के अतिरिक्त और किसी भाव को देख न पावेंगे। हम लोग संसार को ठीक इसी तरह देखेंगे। रामानुज कहते हैं कि जब तक तुम अपने को देह, मन, जीव समझ रहे हो, तब तक तुम्हारे प्रत्येक ज्ञान क्रिया में जीव, जगत् और इन दोनों के कारण स्वरूप वस्तु विशेष का ज्ञान बना रहेगा। लेकिन मनुष्य के जीवन में कभी कभी ऐसा समय भी आता है जिस समय देह का ज्ञान एक-बारगी जाता रहता है, मन तक सूक्ष्मानुसूक्ष्म होते होते प्रायः लोप हो जाता है जिस समय देह में भय और दुर्बलता उत्पन्न करने वाली सभी वस्तुयें चली जाती हैं। उसी समय वह उस प्राचीन महान् उपदेश की सत्यता समझ सकता है। वह उपदेश क्या है?—

इहैव तैर्जितः सर्गो, येषां साम्ये स्थितंमनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणिते स्थिता॥
—गीता ५—१९

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्
—गीता १३। २८

वेदान्त का महत्व

गीताकार ने कहा है। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' २। ४०। थोड़ा भी धर्माचरण करने से मनुष्य बड़ी आपत्तियों से मुक्ति पाता है—अगर इस वाक्य के समर्थन के लिये किसी उदाहरण की आवश्यकता हो तो मैं कह सकता हूँ कि मैं इस क्षुद्र जीवन में पग-पग पर इस वाक्य की सचाई का अनुभव करता हूँ। कुम्भकोनम् के रहनेवाले महानुभावो! मैंने कार्य तो बिल्कुल साधारण किया है, लेकिन कोलम्बो से यहाँ तक जिन जिन स्थानों में मैं गया हूँ, वहाँ वहाँ जैसा मेरा हार्दिक स्वागत किया गया है, उसका मुझे स्वप्न में भी गुमान न था। इसके साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि हिन्दू जाति के पूर्व संस्कारों और भावों के यह उपयुक्त ही हुआ है। इसका कारण यह है कि हिन्दू जाति की मूल जीवनी-शक्ति, हिन्दू जाति का मूल मंत्र ही-धर्म है।

मैं पूर्व और पश्चिम के अनेक देशों में घूमा हूँ—संसार के सम्बंध में मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। मैंने देखा है कि सभी जातियों का एक न एक आदर्श है—वही उस जाति का मेरुदण्ड स्वरूप है। किसी किसी जाति में राजनीति ही की प्रधानता है, कोई जाति सामाजिक उन्नति की ओर झुकी हुई है और कोई मानसिक उन्नति में लगी हुई है किसी में जातीय जीवन की

कुछ और ही भित्ति है। लेकिन हमारे देश भारतवर्ष के जातीय जीवन की मूल भित्ति धर्म है—एक मात्र धर्म है। यही हमारे जातीय जीवन का मेरुदण्ड है इसी पर हमारा जातीय जीवन रूपी प्रासाद खड़ा है।

आप लोगों में से बहुतों को सम्भवतः याद होगा, मद्रास के रहनेवालों ने कृपापूर्वक मुझे अमेरिका में जो अभिनंदन भेजा था उसके उत्तर में मैंने एक विषय का विशेष रूप से उल्लेख किया था। वह यह था कि पाश्चात्य देश के बहुत से भद्र पुरुष कहलाने वाले लोगों से हमारे यहाँ साधारण किसान धर्म विषयों के विशेष जानकार होते हैं। आज मुझे उसके लिये विशेष प्रमाण मिलता है—इस विषय में मुझे और कोई सन्देह नहीं है।

धर्म ही हमारे जातीय जीवन का मेरुदण्ड है

एक समय था जब कि भारत के जन साधारण में संसार की खबरें जानने और उनके संग्रह करने की लालसा का अभाव पाकर मुझे दुःख हुआ करता था। अब मुझे उसका रहस्य मालूम हो गया है। हमारे देश के लोग भी समाचारों को जानने के लिये बहुत व्यग्र रहते हैं। उनका जिस विषय से विशेष अनुराग रहता है, उसी की खबरें जानने के लिये उनमें उत्सुकता रहती है। इस विषय में बल्कि और देशों में जिनमें मैं गया हूँ या देखा है—साधारण लोगों की अपेक्षा उनमें विशेष आग्रह होता है। हमारे देश के किसानों से यूरोप के राजनैतिक हलचलों, सामाजिक उलझनों के सम्बंध में पूछो, वे कुछ न बतायेंगे, क्योंकि

इस विषय से न तो उनका कुछ सम्बंध है और न वे उसे जानना ही चाहते हैं। किन्तु सीलोन में भी (जो भारत से बिल्कुल अलग है—जिसका भारत के स्वार्थ से कोई विशेष सम्बंध नहीं है) देखा कि वहाँ के किसान भी जानते हैं कि अमेरिका में धार्मिक सम्मेलन हुआ था, उनका एक आदमी वहाँ गया था और वह कुछ अंशों में सफल हुआ है। इसलिये यह देखा जाता है कि जिन विषयों की ओर उनका अनुराग है उन्हीं विषयों की बातें जानने के लिये वह संसार की और जातियों की तरह व्याकुल रहते हैं। धर्म ही भारतवासियों की एक मात्र प्रिय वस्तु है।

धर्म हमारे जातीय जीवन की नींव है या राजनीति, इस विषय को लेकर मैं विवाद खड़ा करना नहीं चाहता। तो भी यह स्पष्ट भान पड़ता है कि चाहे अच्छा हो या बुरा, धर्म ही पर हमारे जातीय जीवन की नींव डाली गई है। तुम इसे कभी बदल नहीं सकते—एक वस्तु को नष्ट करके उसकी जगह पर दूसरी चीज़ को बिठाल नहीं सकते। एक बड़े पेड़ को उखाड़ कर तुरन्त ही उसे दूसरे स्थान में गाड़ देने से वह उस स्थान पर जीवित रहेगा, इसकी तुम कभी आशा नहीं कर सकते। चाहे अच्छा हो या बुरा, आज हज़ारों वर्षों से भारत में धर्म ही जीवन का आदर्श हो रहा है, सैकड़ों शताब्दियों से भारत की वायु धर्म के महान् आदर्श से परिपूर्ण है, हम लोग इसी धर्म के आदर्श में पाले-पोसे गये हैं, इस समय यह धर्मभाव हमारे रक्तों में मिल गया है, हम लोगों

की धमनियों के रक्त के साथ वह प्रवाहित हो रहा है—वह हमारा स्वभाव सा बन गया है, हमारे दैनिक जीवन का एक अंग सा हो गया है। महा तेज का विकास न कर—सहस्र वर्षों से महा-नदी ने अपना जो प्रवाह बना लिया है, उसे नष्ट किये बिना, क्या तुम उस धर्म का परित्याग कर सकते हो? क्या तुम गंगा को उसके उद्गम स्थान हिमालय में लेजाकर उसे नये प्रवाह में प्रवाहित करने की इच्छा करते हो?—अगर यह सम्भव भी हो तो भी इस देश के लिये उसकी विशेषता का द्योतक धार्मिक जीवन छोड़ कर राजनीति अथवा और किसी जातीय जीवन के लिये ग्रहण करना सम्भव नहीं। थोड़ी सी बाधा के होने पर ही तुम कार्य कर सकते हो—भारत के लिये धर्म ही वह बाधा है। इसी धर्म-पथ का अनुसरण करना ही भारत का जीवन है—भारत की उन्नति और भारत के कल्याण का एक मात्र उपाय है।

और देशों में भिन्न भिन्न आवश्यकीय वस्तुओं में धर्म भी एक है। एक प्रचलित उदाहरण देता हूँ—मैं सदा यही उदाहरण दिया करता हूँ। अमुक भद्र महिला के घर में तरह तरह की चीज़ें हैं—आजकल का फैशन—एक जापानी बर्तन घर में रहना चाहिये न रहने से अच्छा नहीं दिखलाई पड़ता है—इसलिये उसे जापानी बर्तन घर में रखना ही होगा। इस प्रकार हमारे गृहस्वामी या गृहिणी के अनेक कार्य हैं। उनमें एक धर्म भी चाहिये—तभी सर्वांग पूर्ण हुआ। इसी कारण उन्हें एक आध धर्म के कार्य भी करने चाहिये। संसार के अधिकांश लोगों के जीवन का उद्देश्य—

राजनैतिक वा सामाजिक उन्नति की चेष्टा करना है। ईश्वर और धर्म उनके लिये सांसारिक सुविधाओं के लिये हैं। तुमने क्या सुना नहीं है; दो सौ वर्षों से कितने मूर्ख और अपने को विद्वान समझने वाले लोगों के मुँह से भारतवासियों के धर्म के विरुद्ध यही अभियोग सुनने में आता है कि उनके द्वारा सांसारिक सुख वा स्वच्छन्दता प्राप्ति की सुविधा नहीं होती—उसके द्वारा धनप्राप्ति नहीं होती, उससे समूचे जाति को दस्युओं के रूप में परिणत नहीं किया जा सकता; उसके द्वारा बलवानों को, पूंजीपतियों को यह सुविधा नहीं होती कि वह गरीबों का रक्त शोषण करे!—सचमुच हमारे धर्म में ऐसी सुविधा नहीं है। इस धर्म में दूसरी जातियों को लूटने खसोटने और उनका सर्वनाश करने के लिये भयावनी सेना-भेजने की व्यवस्था नहीं है। इसलिये वे कहते हैं कि इस धर्म में क्या रखा है? उससे चलते हुए कल के लिये अन्न संग्रह नहीं किया जा सकता अथवा उसके द्वारा शरीर में जोर नहीं होता इसलिये इस धर्म में रखा ही क्या है?—वे स्वप्न में भी नहीं सोचते कि इन्हीं युक्तियों के द्वारा ही हमारे धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध होती है हमारे धर्म में सांसारिक सुख नहीं होता, इसलिये हमारा धर्म श्रेष्ठ है। हमारा धर्म ही एक मात्र सद्धर्म है; इसका कारण यह है कि हमारा धर्म यह तीन दिन के लिये चंचल इन्द्रिय जगत को ही हमारा चरम लक्ष्य नहीं बतलाता। यह कई हाथों में विस्तृत क्षुद्र पृथ्वी में हमारे धर्म की दृष्टि आबद्ध नहीं है। हमारा धर्म इस जगत की सीमा के बाहर—दूर—बहुत दूर पर दृष्टि

हिन्दू धर्म का उद्देश्य

डालता है—वह राज्य अतिन्द्रिय है—वहाँ न तो देश है, न काल है; संसार के कोलाहल से दूर, अत्यन्त दूरी पर—वहाँ पर जाने पर—संसार के सुख दुःख कुछ स्पर्श नहीं कर सकते। उस समय सारा जगत् ही उस महिमा-शाली आत्मा रूप महासमुद्र में विन्दु रूप हो जाता है। हमारा धर्म ही सत्य धर्म है—क्योंकि वह यह उपदेश देता है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' हमारा धर्म कहता है कि कांचन लोष्टवत् वा धूल के समान है, संसार में चाहे जितनी क्षमता प्राप्त करो, सभी क्षणिक है, यही क्यों, जीवन धारण करना ही विडम्बना मात्र है, इसी कारण से हमारा धर्म सत्य धर्म है। यही धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि सब से ज़्यादा यही त्याग की शिक्षा देता है। सैकड़ों युगों से संचित ज्ञान बल से दण्डायमान हो वह प्राचीन ज्ञानी पुरुषों के मुक़ाबले में जो कल के छोकरे हैं, उन सब जातियों से गम्भीर तथा स्पष्ट भाषा में कहता है, "बच्चे तुम इन्द्रियों के गुलाम हो—किन्तु इन्द्रियों का भोग अस्थायी है—विनाश ही उसका परिणाम है—इस तीन दिन के क्षणस्थायी विलास का फल—सर्वनाश है! इसलिये इन्द्रियों के सुख की वासना छोड़ो। यही धर्म प्राप्ति का उपाय है" त्याग ही हमारा चरम लक्ष्य है, मुक्ति का सोपान है, भोग नहीं। इसी कारण हमारा धर्म ही एक मात्र सत्य धर्म है। आश्चर्य है कि एक जाति के बाद दूसरी जाति ने संसार रूपी रङ्ग मंच पर आकर कुछ देर के लिये बड़े

तड़क भड़क से अपना पार्ट अदा किया है ; परन्तु दूसरे ही क्षण उसका अन्त हो गया है ! काल समुद्र में उन्होंने एक तरङ्ग भी नहीं पैदा किया है—अपना कोई चिन्ह तक नहीं छोड़ गये हैं। हम लोग अनन्त काल से काकभुशुण्डी की तरह बचे हुए हैं। हम लोगों की कभी मृत्यु होगी, इसका भी चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ता।

सब से योग्य कौन है? प्राच्य या पाश्चात्य?

आजकल लोग 'योग्यतम का उज्जीवन' (Survival of the fittest) विषयक नये मतवाद को लेकर बहुत बातें करते फिरते हैं। उनका कहना है कि जिसमें जितनी ज़्यादा ताकत है, वह उतने ही ज़्यादा दिन तक बचा रहेगा। अगर इसी को सच मान लें तो प्राचीन काल की जो जातियाँ झगड़े में ही समय बिताया करती थीं, वह आज भी बड़े गौरव के साथ जीवित रहतीं और हम लोग—यह कमज़ोर हिन्दू जाति—(मुझसे एक अंग्रेज़ रमणी ने एक बार कहा था कि हिन्दुओं ने क्या किया है? उन्होंने तो एक जाति को भी नहीं जीता है!) वही जाति—जिसने कभी एक जाति को नहीं जीता है—वही इतने दिनों में लुप्त हो गई होती। लेकिन वही जाति तीस करोड़ प्राणियों को लिये अभिमानपूर्वक जीवित है! और यह भी सत्य नहीं कि इस जाति की सारी शक्ति क्षय हो गयी है। यह भी सच नहीं है कि इस जाति के शरीर के सारे अंग शिथिल हो गये हैं। इस जाति में अब भी काफ़ी जीवनी-

शक्ति है। जभी उपयुक्त समय आयेगा, वह जीवनीशक्ति महानदी की तरह प्रवाहित होने लगेगी। अत्यन्त प्राचीन काल से हम लोग मानों एक बड़ी जटिल समस्या को हल करने के लिये आह्वान करते हैं। पाश्चात्य देशों में सभी यही चेष्टा करते हैं कि किस प्रकार वे लोग जगत की और जातियों से बढ़कर धनवान होंगे, लेकिन हम लोग यहाँ इसी समस्या को हल करते रहते हैं कि कितनी थोड़ी सी सामग्री को लेकर हम लोग अपनी ज़िन्दगी का निर्वाह कर सकते हैं। दोनों जातियों में यही संघर्ष और भेद अब भी कई शताब्दियों तक चलेगा। लेकिन इतिहास में यदि कुछ भी सत्य का अंश हो, यदि वर्तमान चिन्हों को देखकर भविष्य का अनुमान करना ज़रा भी सम्भव हो तो यह देख पड़ेगा कि जो थोड़े में जीवन यात्रा निर्वाह करेंगे और अच्छी तरह से आत्म संयम करने का प्रयत्न करेंगे वही युद्ध में, अन्त में, विजयी होंगे। और जो लोग ऐशो आराम और विलासिता की ओर झुक रहे हैं, वे कुछ देर के लिये भले ही तेजस्वी और बलवान् जान पड़ें, अन्त में वह बिल्कुल नष्ट हो जाँयगे।

मनुष्य जीवन में, यही क्यों, जातीय जीवन में समय समय पर संसार से एकदम विरक्ति हो जाती है। जान पड़ता है, सारे पाश्चात्य देशों में इसी तरह संसार से एक प्रकार की विरक्ति का भाव आ रहा है। पाश्चात्य देशों के बड़े से बड़े विद्वान और विचारक अब इस बात का अनुभव करते हैं कि

धन ऐश्वर्य के लिये सिर तोड़ परिश्रम करना बिल्कुल व्यर्थ है।

पाश्चात्य देश में वेदान्त के प्रचार का समय आ गया है

वहाँ के अधिकांश शिक्षित स्त्री-पुरुष अपने वाणिज्य प्रधान सभ्यता की इस प्रतियोगिता, इस संघर्ष, इस पशुत्व से बिल्कुल विरक्त हो गये हैं। वे इस अवस्था को बदल कर इससे उन्नत अवस्था के आविर्भाव की आशा और इच्छा कर रहे हैं। एक श्रेणी के लोग हैं, जिन की अब भी दृढ़ धारणा है कि राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन ही यूरोप की सारी खराबियों के दूर करने का एक मात्र उपाय है। लेकिन बड़े बड़े विचारशील लोगों के कुछ और ही विचार हो रहे हैं। उन लोगों ने समझ रखा है कि सामाजिक वा राजनैतिक परिवर्तन चाहे कितना ही क्यों न हो, इससे मनुष्य जाति के दुःख कष्ट किसी तरह भी कम न होंगे। केवल आत्मा की उन्नति करने से ही सब प्रकार के दुःख कष्ट दूर होंगे। चाहे कितना ही बल प्रयोग क्यों न करो, शासन प्रणाली में कितना ही रद्द बदल क्यों न करो, कानूनों को चाहे कितना ही कड़ा क्यों न करो, इनसे किसी जाति की दशा कभी नहीं सुधर सकती। केवल आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा ही लोगों की कुप्रवृत्तियों को बदल कर उन्हें अच्छे मार्ग पर ले जायगी। इसलिये पाश्चात्य लोग किसी नये भाव तथा दर्शन के लिये व्यग्र हो उठे हैं। वे लोग जिस धर्म के मानने वाले हैं, उस धर्म—ईसाई धर्म—के सिद्धान्त उदार और सुन्दर होने पर भी

वे उनका मर्म भली भाँति नहीं समझते। और इतने दिनों से वे ईसाई धर्म को जिस रूप में समझते आये हैं, वह उन्हें अब पर्याप्त नहीं जान पड़ता। पाश्चात्य देशों के विचारशील लोग हम लोगों के प्राचीन दर्शनों में, विशेषकर वेदान्त में ही—जिसे वे लोग इतने दिनों से ढूँढ़ते आ रहे थे, उस विचार प्रवाह को, उस आध्यात्मिक खाद्य-सामग्री को पाते हैं। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं।

संसार में जितने प्रकार के धर्म हैं, उनमें से प्रत्येक की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिये उस धर्म के मानने वाले तरह तरह की दलीलें पेश करते हैं। मैं उन दलीलों के सुनने
वेदान्त ही एक का आदी हो गया हूँ। अभी थोड़े ही दिन की
मात्र सार्वभौम है बात है, मेरे प्रगाढ़ मित्र ब्यारोज साहब ने इसे प्रतिपादन की बड़ी चेष्टा की कि ईसाई धर्म ही एक मात्र सार्वभौम-धर्म है, आप लोगों ने भी इसे सुना ही होगा। इस समय इसी विषय पर विचार करके देखना चाहिये कि कौन धर्म सार्वभौम धर्म हो सकता है। मेरी धारणा है कि वेदान्त—केवल वेदान्त ही सार्वभौम धर्म हो सकता है, और कोई धर्म नहीं हो सकता। मैं आप लोगों को अपने विश्वास के लिए युक्तियाँ दूँगा। हम लोगों के धर्म को छोड़कर संसार के प्रायः सभी प्रधान प्रधान धर्म उनके प्रवर्तकों से अभिन्न भाव से सम्बद्ध (जुड़े हुए) हैं। उनके वाक्य ही उन धर्मावलम्बियों के लिये प्रमाण स्वरूप हैं, उनके वाक्य होने के कारण उस धर्म के

अनुयायीगण पर इतना उनके उपदेशों का प्रभाव पड़ता है। और आश्चर्य की बात यह है कि उस धर्म प्रवर्तक के जीवन की ऐतिहासिकता पर उस धर्म की सारी बुनियाद होती है। अगर उस जीवन को ऐतिहासिकता पर ज़रा भी आघात किया जाय, यदि उनके उक्त ऐतिहासिकता की बुनियाद को एक बार हिला दिया जाय तो वह धर्म रूपी इमारत बिल्कुल ढह पड़ेगी—और उसके पुनरुद्धार की ज़रा भी सम्भावना न रहेगी। वास्तव में इस समय के सभी धर्म-प्रवर्तक के जीवन के सम्बन्ध में वही घटित होता है। मैं जानता हूँ कि उनके जीवन की करीब आधी घटनाओं पर लोगों का वास्तव में विश्वास नहीं होता, और बाकी आधी घटनाओं पर भी विशेष सन्देह होता है। हमारे धर्म को छोड़कर संसार के और बड़े बड़े धर्म ऐतिहासिक जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित हैं, किन्तु हमारा धर्म कई एक तत्वों पर प्रतिष्ठित है। कोई पुरुष वा स्त्री वेदों का रचयिता होने का दावा नहीं कर सकती। वेदों में सनातन तत्व लिपि-बद्ध हैं, ऋषि लोग उनके आविष्कर्ता मात्र हैं। स्थान-स्थान पर उन ऋषियों के नाम लिखे हुए हैं ज़रूर, किन्तु नाम मात्र के लिये। वे कौन थे, क्या करते थे, यह भी हम नहीं जानते। कई स्थानों पर यह भी पता नहीं चलता कि उनके पिता कौन थे, और प्रायः सभी के जन्म-स्थान और जन्म-काल के सम्बन्ध में हम लोग बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वास्तव में वे ऋषि लोग नाम के भूखे न थे, वे सनातन तत्वों

के प्रचारक थे और अपने जीवन में उन तत्वों को ला करके आदर्श जीवन विताने का प्रयत्न करते थे।

जिस प्रकार हम लोगों का ईश्वर निर्गुण और सगुण है उसी प्रकार हम लोगों का धर्म भी बिल्कुल निर्गुण है—अर्थात् किसी व्यक्ति विशेष के ऊपर हमारा धर्म निर्भर नहीं करता और

इसमें अनन्त अवतारों और महापुरुषों के

वेदान्त में असंख्य लिये स्थान हो सकता है। हमारे धर्म में जितने अवतारों के लिये अवतार, महापुरुष, ऋषि आदि हैं उतने और स्थान है किस धर्म में हैं? केवल यही नहीं, हमारा धर्म

कहता है—वर्तमान काल तथा भविष्य में और

भी अनेक महापुरुषों और अवतारों का अभ्युदय होगा! भागवत में लिखा है—अवताराह्यसंख्येयाः'—३। २६। इसलिये आपके धर्म में नये नये धर्मप्रवर्तक, अवतार आदि को ग्रहण करने में कोई वाधा नहीं है। इसलिये भारत के इतिहास में जिन अवतारों और महापुरुषों का वर्णन किया गया है, यदि यह प्रमाणित हो जाय कि वे ऐतिहासिक नहीं हैं, तो इससे हमारे धर्म को ज़रा सा भी धक्का नहीं पहुँच सकता। यह पहले ही की तरह दृढ़ रहेगा, क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष के ऊपर यह धर्म प्रतिष्ठित नहीं है—सनातन सत्य के ऊपर ही यह स्थापित है। संसार के सभी लोगों को ज़ोर देकर किसी व्यक्ति विशेष को मनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है,—यही क्यों, सनातन और सार्वभौमिक तत्वों को लेकर भी बहुतों को एक मत में करना कठिन है।

तो भी अगर कभी संसार के अधिकांश लोगों को धर्म के सम्बन्ध में एक मतावलम्बी करना संभव हो भी, तो भी किसी व्यक्ति विशेष को मनाने की चेष्टा करने से ऐसा न हो सकेगा वरन् सनातन तत्वों में विश्वास जमा कर बहुत से एक मत के मानने वाले हो सकते हैं। और हमारा धर्म व्यक्ति विशेष की बातों की प्रामाणिकता और प्रभाव को बिल्कुल ही स्वीकार करता है, यह बात पहले ही कही जा चुकी है।

'इष्ट निष्ठा' रूप में जो अपूर्व मत हमारे देश में प्रचलित है, उसमें इन सब अवतारों में जिसे तुमारी इच्छा आदर्श रूप में स्वीकार करने की हो, उसके लिये स्वाधीनता दी गई है। तुम जिस किसी अवतार को अपने जीवन के लिये आदर्श रूप में और विशेष उपासक के तौर पर ग्रहण कर सकते हो। यही क्यों, तुम उसे सभी अवतारों में श्रेष्ठ स्थान भी दे सकते हो, इसमें कोई क्षति नहीं, लेकिन सनातन तत्व समूह ही तुम्हारे धर्म साधन की मूल भित्ति है। इस बात को विशेष रूप से लक्ष्य करने से आश्चर्य होगा कि चाहे वह अवतार ही क्यों न हो, वैदिक सनातन तत्वों का जीता जागता नमूना होने के कारण ही वह हमारे लिये मान्य है! श्रीकृष्ण की यही महानता है कि वह इस तत्वात्मक सनातन धर्म के श्रेष्ठ प्रचारक और वेदान्त के सब से बढ़कर व्याख्याता हैं।

संसार के सभी लोगों को वेदान्त की चर्चा करना क्यों उचित है, इसका पहला कारण यह है कि वेदान्त ही एक मात्र सार्वभौम

धर्म है। दूसरा कारण यह है कि संसार के जितने शास्त्र हैं, उनमें इसी के उपदेशों के साथ बहिर्प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसंधान का जो परिणाम निकला है, उसका बिल्कुल सामँजस्य है। अत्यन्त प्राचीन काल में आकृति, वंश और भाव में बिल्कुल मिलती जुलती दो भिन्न जातियाँ भिन्न मार्गों से संसार के तत्वानुसंधान में प्रवृत हुईं। मैं प्राचीन हिन्दू और प्राचीन ग्रीक जाति की बात कह रहा हूँ। इसमें अन्तिम जाति बाह्य जगत् का विश्लेषण कर उस चरम लक्ष्य के अनुसंधान में प्रवृत हुई थी और पहली जाति अन्तर्जगत का विश्लेषण कर इस कार्य के लिये अग्रसर हुई थी। और उनके इस विश्लेषण के इतिहास की भिन्न भिन्न अवस्थाओं की आलोचना करने से देखा जाता है कि यह विभिन्न प्रकार की विचार प्रणाली उस चरम लक्ष्य के सम्बन्ध में एक ही बात बतलाती है। इससे यह स्पष्ट जाना पड़ता है कि आधुनिक जड़ विज्ञान के सिद्धान्तों को केवल वेदान्ती ही—जो अपने को हिन्दू नाम से पुकारते हैं—अपने धर्म के साथ सामंजस्य करके ग्रहण कर सकते हैं—इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वर्तमान जड़वाद अपने सिद्धान्तों को बिना छोड़े ही वेदान्त के सिद्धान्तों को ग्रहण करके ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकती है। हम लोगों को तथा जिन्होंने इस विषय की अच्छी तरह से आलोचना की है, उनको यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि आधुनिक विज्ञान जिन सिद्धान्तों को क़ायम कर रहा है, उन्हें कई शता-

वेदान्त विज्ञान सम्मत है

न्द्रियों पहले ही वेदान्त स्वीकार कर चुका है, केवल आधुनिक विज्ञान में उन्हें जड़ शक्ति के रूप में उल्लेख किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य जातियों के लिये वेदान्त की आलोचना का दूसरा कारण है—इसकी अद्भुत युक्ति-सिद्धता। मुझसे पाश्चात्य देशों के अनेक बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने कहा है कि वेदान्त के सिद्धान्त, अपूर्व युक्तिपूर्ण हैं। उनमें एक आदमी के साथ मेरा खासा परिचय है। वह खाने-पीने की तथा अपनी लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) से बाहर जाने का अवकाश नहीं पाते हैं, लेकिन वह मेरे वेदान्त विषयक व्याख्यानों को घण्टों सुना करते हैं। जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि वेदान्त के उपदेश इतने विज्ञान सम्मत हैं, वर्तमान युग के अभावों की इस अच्छे ढंग से पूर्ण करते हैं और आधुनिक विज्ञान धीरे धीरे जिन सिद्धान्तों पर पहुँचता जाता है, इनके साथ उसका इतना सामंजस्य है कि उसके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

सभी धर्मों की तुलनात्मक समालोचना करके उससे जो दो वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राप्त होते हैं, उसकी ओर आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। प्रथम तत्व यह है कि सभी धर्म सत्य हैं। और दूसरा तत्व यह है कि संसार की सभी वस्तुयें प्रत्यक्ष में विभिन्न जान पड़ने पर भी एक ही वस्तु की विकास मात्र हैं।

एकेश्वरवाद की उत्पत्ति का इतिहास

वैबिलोनियन और यहूदी धर्म के इतिहास की आलोचना करने से हमें एक विशेष बात दिखलाई पड़ती है। उसमें

हम देखते हैं कि बैबिलोनियन और यहूदी जातियों में छोटी छोटी शाखायें और प्रत्येक के पृथक् पृथक देवता थे। इन सभी पृथक् पृथक् देवताओं के फिर एक साधारण नाम थे। बैबिलोनियन लोगों के सभी देवताओं का साधारण नाम था बाल। उनमें बालमेरोदक प्रधान था। कालक्रम से इस उप-जाति ने उस जाति के अन्तर्गत उपजातियों को जीत कर उन्हें अपने में मिला लिया। उसका स्वाभाविक फल यह होता था कि विजेता जाति का देवता और दूसरी जातियों के देवताओं में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करता था। सेमाइट जाति में जो एकेश्वरवाद को लेकर गौरव करती है, वह इसी प्रकार हुआ था। यहूदी जाति के सभी देवताओं का नाम था मोलक। इनमें इस्राइल जाति के देवता का नाम था मोलक यावा। इसी इस्राइल जाति ने क्रमशः उस समय की और जातियों को जीत कर अपने मोलक को और दूसरे मोलकों की अपेक्षा श्रेष्ठ और प्रधान मोलक घोषित किया। इस प्रकार धर्मयुद्ध में जितना रक्तपात और पाशविक अत्याचार हुआ था, उसे आप लोगों में से बहुत से लोग जानते होंगे। बाद में बैबिलोनियन लोगों से मोलक यावा जाति की इस प्रधानता को नष्ट करना चाहा था, परन्तु वह सफल नहीं हुए।

हमें जान पड़ता है कि धर्म विषय में पृथक् पृथक जातियों में प्रधानता प्राप्त करने की चेष्टा भारत के सीमान्त प्रदेश में भी हुई थी। यहाँ भी सम्भवतः आर्य जाति की विभिन्न शाखायें

भारत और दूसरे देशों में भिन्न भिन्न जातियों के देवताओं का प्राधान्य प्राप्ति के प्रयत्न का फल—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

आपस में एक दूसरे के देवता से अपने देवता की श्रेष्ठता स्थापित करने की कोशिश करती थीं। लेकिन ईश्वर की कृपा से भारत का इतिहास यहूदी लोगों के इतिहास सा नहीं हुआ। मानो ईश्वर ने और दूसरे देशों की अपेक्षा भारत को और दूसरे धर्मों से द्वेषशून्य और धर्म साधना में गौरवपूर्ण भूमि बनाने का संकल्प कर लिया था। इसी कारण से ही यहाँ पर भिन्न भिन्न जातियों और उनके देवताओं में जो द्वन्द्व चलता था, वह ज़्यादा दिन तक क़ायम न रह सका। इसी इतिहास के बहुत पहले, अत्यन्त प्राचीन काल में भारत में एक बहुत बड़े महात्मा पैदा हुए। संसार में ऐसे महात्मा बहुत कम पैदा हुए होंगे। इस महापुरुष ने उस प्राचीन काल में ही उस सत्य को प्राप्त कर उसका प्रचार किया—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' वास्तविक जगत में एक ही वस्तु है, विप्र अर्थात् साधु पुरुष उसे भिन्न भिन्न रूप में वर्णन करते हैं। ऐसी चिरस्मरणीय वाणी और कभी उच्चारित नहीं हुई थी और न ऐसा महान् सत्य ही कभी आविष्कृत हुआ। और यही सत्य ही हमारी हिन्दू जाति के जीवन का मेरुदण्ड होकर रहा है। सैकड़ों शताब्दियों से लेकर इसने तत्व—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'—क्रमशः परिस्फुटित होकर हमारी समूचे जाति के जीवन को ओतप्रोत भाव से आच्छन्न

कर लिया है, हमारे रक्त में मिल सी गई है—मानो हमारे जीवन के साथ बिल्कुल मिल सी गई है। हम लोग इस महान् सत्य को प्राणों से बढ़कर चाहते हैं—इसी से हमारा देश दूसरों से द्वेष-रहित होने से दृष्टान्त स्वरूप हो रहा है। यहीं—पर केवल इसी देश में लोग अपने धर्म के कट्टर विद्वेषी धर्मावलम्बियों के लिये भी मन्दिर, गिरजाघर आदि बनवा देते हैं। संसार को हम लोगों से इस धर्म-द्वेष-रहित होने के गुण को सीखना होगा।

हमारे देश के बाहर अब भी अपने से भिन्न मतावलम्बियों के विरुद्ध लोग कितना द्वेष भाव रखते हैं, उसे आप लोग कुछ नहीं जानते। बहुत से जगहों में दूसरे मज़हब वालों से लोग इतनी ईर्ष्या रखते हैं कि बहुत बार मेरे मन में ऐसा भाव पैदा होता है कि कब इस मुल्क से पल्ला छुड़ा कर दूसरी जगह चला जाऊँ। धर्म के लिये किसी आदमी को मार डालना इतनी साधारण बात है कि आज न हो कल ही इस महा अभिमानी पाश्चात्य सभ्यता के केन्द्र-स्थानों में ऐसे वाक़यात अक्सर हुआ करेंगे। किसी प्रतिष्ठित धर्म के विरुद्ध कुछ कहने का साहस करने पर उस व्यक्ति को समाजच्युत तथा उस तरह के जितने कड़े से कड़े दण्ड दिये जा सकते हैं, सहन करने पड़ेंगे। इस समय वह हमारे जाति-भेद के विरुद्ध वे भले ही बढ़ बढ़ कर बातें कह लें, मैं जिस तरह पाश्चात्य देशों में रह आया हूँ, आप लोग भी अगर उसी तरह वहाँ जाकर कुछ दिन तक रहें तो जान सकेंगे कि वहाँ के बड़े बड़े प्रोफेसर तक (जिनकी

बातें आप लोग इस समय .खूब सुन पाते हैं) बड़े कायर हैं, और धर्म के सम्बन्ध में वे लोग जो कुछ सत्य समझ कर विश्वास करते हैं, उसका सहस्रांश भी सर्वसाधारण की टीका-टिप्पणी के भय से कहने का साहस नहीं करता।

इसी कारण से संसार को द्वेषरहित बनने का, सहिष्णुता का पाठ पढ़ाना होगा। आधुनिक सभ्यता के भीतर इस भाव के प्रवेश करने से उसका विशेष कल्याण होगा। वास्तव में इस भाव के प्रवेश करने से कोई सभ्यता अधिक दिन तक चिर-स्थायी न रह सकेगी। गुंडापन, रक्तपात, बर्बरतापूर्ण अत्याचार ये जितने दिन तक बन्द होंगे, उतने दिन तक सभ्यता का विकाश नहीं हो सकता। जितने दिन तक हम लोग परस्पर मित्रता का भाव न रखेंगे; उतने दिन तक कोई सभ्यता सिर नहीं उठा सकती, और इस मैत्री भाव के विकाश का प्रथम सोपान है—परस्पर धर्म विश्वास के ऊपर सहानुभूति प्रकट करना। केवल यही नहीं, असल में इस भाव को हृदय में अच्छी तरह जमा देने पर परस्पर मित्रता का भाव रखने से नहीं चलेगा, एक दूसरे के धर्म और विश्वास चाहे जितने पृथक क्यों न हों आपस में एक दूसरे की सभी बातों में अच्छी तरह सहायता करनी होगी। हम लोग भारत में ठीक ऐसा ही करते हैं, मैं आपको यह बतला चुका हूँ। इसी भारत में केवल हिन्दुओं ने ही ईसाइयों के लिये चर्च और मुसलमानों के लिये मसजिद बनवाई है और अब भी ऐसा ही करते हैं। सब लोगों को ऐसा ही

करना होगा। वे लोग हम लोगों के प्रति चाहे जितना घृणा-
भाव क्यों न रखें, चाहे जितना पशुता का भाव क्यों न रखें, वे
जितनी निष्ठुरता क्यों न दिखलावें, कितना हूँ अत्याचार क्यों
न करें, हम लोग इन ईसाइयों के लिये गिरजाघर और मुसल-
मानों के लिये मसजिद बनवाना न छोड़ें। और हम लोग संसार
के सामने यह सिद्ध न कर दें कि घृणा और विद्वेष परायण
जाति कभी दीर्घ जीवन प्राप्त नहीं कर सकती, बल्कि प्रेम के द्वारा
ही जातीय जीवन स्थायी होता है; केवल पशुबल और शारीरिक
शक्ति कभी जय नहीं प्राप्त कर सकती; क्षमा और कोमलता से
ही संसार-रूपी समरभूमि में जय प्राप्त किया जा सकता है!

हम लोगों को संसार को, यूरोप और सम्पूर्ण संसार के
विचारशील व्यक्तियों को एक और बड़े भारी तत्त्व की शिक्षा
देनी होगी। सम्पूर्ण जगत् का आध्यात्मिक
संसार को यह भी एकत्व रूप यह सनातन महान् तत्व संभवतः उच्च
सिखाना होगा कि जातियों की अपेक्षा निम्न जातियों को, शिक्षितों
सम्पूर्ण जगत् बहुत की अपेक्षा, साधारण लोगों को, बलवानों की
जान पड़ने पर भी अपेक्षा दुर्बलों को ही अधिक आवश्यकीय है।
एक ही है। मद्रास विश्वविद्यालय के शिक्षित लोगों! आप
लोगों को और विस्तार करके यह समझाने की
जरूरत नहीं, कि यूरोप की आधुनिक अनुसंधान प्रणाली
ने किस प्रकार भौतिक दृष्टि से सारे संसार का एकत्व सिद्ध
कर दिया है—भौतिक दृष्टि से ही तुम, हम, सूर्य, चन्द्र,

तारा, आदि सभी अनन्त जड़ समुद्र में छोटी छोटी लहरों के समान हैं। और सैकड़ों शताब्दी पहले भारतीय मनोविज्ञान ने भी जड़ विज्ञान की तरह सिद्ध किया है कि शरीर और मन दोनों ही जड़ समुद्र या समष्टि में कितनी पृथक संज्ञा अथवा क्षुद्र क्षुद्र तरंगें हैं। और एक पग आगे बढ़ने पर वेदान्त में दिखलाई पड़ता है कि इस दृश्य जगत के एकत्व भाव के पीछे जो यथार्थ आत्मा है वह भी 'एक' मात्र है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक मात्र आत्मा ही विराजमान है, वही एक मात्र सत्तामात्र है। सारे ब्रह्माण्ड के मूल, वास्तव में, जो यह एकत्व है, इस महान् तत्व को सुन कर बहुत से लोग चौंक पड़ेंगे। और देशों को कौन कहे, हमारे देश में भी बहुत से लोग इस अद्वैतवाद से भयभीत होंगे। अब भी इस मत के मानने वालों से इस मत के विरोधियों की संख्या ही ज़्यादा होगी। तो भी मैं आप लोगों से कहता हूँ कि यदि संसार को जीवन प्रदान करने वाली कोई शिक्षा देनी है, तो यह अद्वैतवाद है। भारत के मूक जनसाधारण की उन्नति के लिये इस अद्वैतवाद के प्रचार की ही आवश्यकता है। इस अद्वैतवाद को कार्यरूप में परिणत किये बिना हमारी इस मातृभूमि के उद्धार का और कोई उपाय नहीं।

युक्तिवादी पाश्चात्य जाति के लोग अपने सभी दर्शनों और नीति विज्ञान की मूल भित्ति ढूँढ रहे हैं। लेकिन कोई व्यक्ति विशेष-चाहे वह कितना हूँ बड़ा या ईश्वर के समान ही क्यों न हो, वह

कल जन्म लेकर आज मृत्यु के मुँह में पतित होता है, उस समय उसका अनुमोदित कोई दर्शन वा नीतिविज्ञान अद्वैतवाद ही प्रमाण रूप नहीं माना जाता। संसार के बड़े बड़े नीति विज्ञान विचारशील लोगों के सामने उनकी नीति वा दर्शन की मूल भित्ति है प्रामाणिक नहीं हो सकता, वह लोग किसी मनुष्य के द्वारा अनुमोदित है, इसी से उसे प्रामाणिक न मान कर सनातन तत्वों के ऊपर ही उसकी भित्ति स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। नीति विज्ञान की यह सनातन भित्ति सनातन आत्म तत्व को छोड़ कर और क्या हो सकता है कि एक मात्र अनन्त सत् तुम्हारे, हमारे, हमारे सभी आत्मा में वर्तमान है? आत्मा की अनन्त एकता ही सब तरह की नीति का मूल कारण है तुममें हम में केवल भाई भाई का ही सम्बन्ध नहीं है, मानव जाति की दासत्व शृङ्खला को तोड़ने की चेष्टा करने वाले सभी ग्रन्थों में यह भ्रातृ भाव की बात मौजूद है और हम लोग भी लड़कपन ही से इसको जानते हैं लेकिन वास्तव में हम और तुम एक ही हैं। भारतीय दर्शनों का यही सिद्धान्त है। सब प्रकार की नीति और धर्म विज्ञान की मूल भित्ति ही यह एकत्व है।

हम लोगों के देश की सामाजिक अत्याचारों से पिसी हुई निम्न जातियाँ जिस प्रकार इस सिद्धान्त से लाभ उठा सकती हैं, वैसे ही यूरोप के लिये उसका प्रयोजन है वास्तव में इंगलैंड, जर्मनी, फ्रान्स और अमेरिका में जिस प्रकार राजनैतिक और सामा-

जिक उन्नति की चेष्टा की जा रही है, उस से स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि अनजाने ही क्यों न हो, वे इस महान तत्त्व को इन सब की मूल भित्ति रूप में ग्रहण करते हैं। हे भाइयो, आप लोग यह भी लक्ष्य करें कि साहित्य में जहाँ मनुष्य जाति की स्वाधीनता-अनन्त स्वाधीनता की चेष्टा होगी, वहीं पर भारतीय वेदान्त का आदर्श ग्रहण किया जायगा। किसी किसी क्षेत्र में लेखकों ने अपने प्रचारित भावों की मूल भित्ति के सम्बंध में अनभिज्ञ हो किसी किसी स्थान पर उन्होंने अपने को मौलिक तत्वों की गवेषणा करनेवाला बतलाया है। लेकिन किसी किसी ने निर्भय हो कृतज्ञतापूर्वक कहाँ से उन्होंने उस तत्व को ग्रहण किया है, इसका उल्लेख करके उसके प्रति ऋणी बतलाया है।

भाइयो, जिस समय मैं अमेरिका में था, उस समय मैं अद्वैतवाद का ही अधिक प्रचार करता हूँ द्वैतवाद का नहीं, ऐसा अभियोग सुना था। द्वैतवाद के प्रेम भक्ति उपासना में कैसा अपूर्व परमानंद प्राप्त होता है, उसे मैं जानता हूँ—उसकी अपूर्व महिमा से भी मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। लेकिन भाइयो, इस समय हम लोगों को रोने धोने का समय नहीं है। हम लोग काफी रो-धो चुके हैं। अब हम लोगों को कोमल भावों के ग्रहण करने का समय नहीं है। इस तरह की कोमलता की सिद्धि करते करते हम लोग इस समय मुर्दे सरीखे हो रहे हैं, हम लोग रूई की तरह कोमल हो गये हैं। हमारे देश के लिये इस

अद्वैतवाद के प्रचार का कारण

समय आवश्यकता है—लोहे की तरह मांसपेशी और स्नायुओं से युक्त बनने की, इतनी दृढ़ इच्छाशक्ति सम्पन्न होने कि कोई उसका प्रतिरोध करने में समर्थन हो, जिससे कि वह ब्रह्माण्ड के सभी रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हो, यद्यपि इस कार्य साधन के लिए समुद्र के तल में जाना पड़े, चाहे मृत्यु का ही आलिङ्गन क्यों न करना हो, यह सब कुछ करना हम लोगों को आवश्यक है; और अद्वैतवाद के महान् आदर्श को सामने रख-कर ही ऐसे भाव हम में आ सकते हैं।

विश्वास, विश्वास, विश्वास—अपने ऊपर विश्वास रखना, ईश्वर पर विश्वास रखना ही—उन्नति प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। यदि तुम अपने पुराणों में लिखे हुए तैंतिस करोड़ देवताओं पर विश्वास रखो, साथ ही विदेशियों में ही उन प्रकार की जितने जितने देवता हैं, उन सब पर भी विश्वास रखो और अगर तुममें आत्मविश्वास न हो, तो तुम्हारी मुक्ति कभी, नहीं हो सकती।

आत्मविश्वास उन्नति का मूल है

अपने ऊपर भरोसा रखो—उस विश्वास बल पर अपने पैरों पर खड़े होओ और वीर्यशाली बनो। इस समय हमारे लिये यही आवश्यक है। हमारे देश के ये तैंतिस करोड़ लोग मुट्ठी भर विदेशियों के सामने सिर झुकाते हैं और वह लोग हमसे नहीं झुकते हैं, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि उनको अपने पर विश्वास है और हम लोगों को अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैंने पाश्चात्य देशों में जाकर क्या सीखा है? ईसाई लोग

मनुष्य मात्र को पतित और लाचार और पापी समझते हैं, इन व्यर्थ की बातों में न पड़कर उनकी जातीय उन्नति का कारण क्या है, यह देखा; मैंने यूरोप और अमेरीका दोनों महाद्वीपों में देखा कि दोनों महाद्वीपों के जातीय हृदय के अन्तर में उनका महान आत्मविश्वास छिपा हुआ है। एक अंग्रेज बालक तुमसे कहेगा, मैं अंग्रेज हूँ, मैं सब कुछ कर सकता हूँ। अमेरिकन बालक भी यही कहेगा—प्रत्येक यूरोपीय बालक यही कहेगा। हमारे बच्चे क्या ऐसा कह सकते हैं ? कभी नहीं, बच्चे ही क्यों, उनके पिता तक ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकते। हम लोगों ने अपने ऊपर विश्वास खो दिया है। इसी कारण से वेदांत के अद्वैतवाद का प्रचार करना आवश्यक है जिससे लोगों के हृदय में जागृति पैदा हो, जिससे वह अपनी आत्मा की महिमा को जान सकें। इसी कारण से मैं अद्वैतवाद का प्रचार करता हूँ और मैं इसका प्रचार साम्प्रदायिक भाव से नहीं करता, बल्कि मनुष्य जाति का कल्याण हो, सब का भला हो, इस भाव से इसका प्रचार कर रहा हूँ।

इस अद्वैतवाद का इस प्रकार प्रचार किया जा सकता है—जिससे द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी को भी किसी तरह की आपत्ति का कारण न रहेगा और इन सभी मतों का सामंजस्य साधन भी कोई कठिन नहीं। भारत में ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं जिसमें यह न कहा गया हो कि भगवान् सब के भीतर निवास करते हैं। हमारे वेदान्त मत के विभिन्न सम्प्रदाय वाले सभी

स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा में पहले से ही पूर्ण-पवित्रता, वीर्य और पूर्णता छिपी हुई है। तो भी किसी किसी के मतानुसार यह पूर्णता कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी विकास को प्राप्त होती है। यह होने पर भी वह पूर्णता हमारे ही भीतर रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अद्वैतवाद के सिद्धान्तानुसार वह न तो संकुचित होता है और न विकास को ही प्राप्त है। केवल समय समय पर प्रकट और गुप्त रहता है ऐसा होने से कार्यतः द्वैतवाद के साथ वह एक रूप है। एकमत दूसरे को अपेक्षा न्याय-संगत और युक्ति-संगत हो सकता है, लेकिन कार्यतः प्रायः दोनों एक ही हैं। इस मूल तत्व का प्रचार करना संसार के लिये अत्यावश्यक हो रहा है। और हमारी मातृभूमि भारत में इसका जितना अभाव है, उतना किसी भी देश में नहीं है।

भाइयो, मैं आप लोगों को कुछ कड़ी बातें सुनाना चाहता हूँ;—अखबारों में निकलता है—हमारे एक दरिद्र व्यक्ति को किसी अंग्रेज़ ने मार डाला है, अथवा उसके साथ बहुत असभ्य बर्ताव किया है। इससे देश भर में हलचल मच जाती है, हम लोग पढ़कर आँखों से आँसू गिराते हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण हमारे मन में प्रश्न उठता है, इसके लिये उत्तरदायी कौन है? जब मैं वेदान्ती हूँ, तो मैं इस प्रश्न को किये बिना नहीं रह सकता। हिन्दू जाति अन्तर्दृष्टि रखने वाली है, वह अपने ही भीतर सब बातों का कारण ढूँढती है। मैं जभी अपने मन से इस

अपनी दुर्दशा के लिये हम ही उत्तरदायी हैं।

बात को पूछता हूँ कि इसके लिये जिम्मेदार कौन है ?—उस समय प्रत्येक बार मैं यह उत्तर पाता हूँ कि इसके लिये अंग्रेज़ उत्तरदायी नहीं हैं, हमी लोग अपनी सब तरह की दुर्दशा, अवनति और कष्टों के लिये उत्तरदायी हैं। केवल हमी लोग ज़िम्मेदार हैं।

हमारे पुरखे अपने देश के साधारण लोगों को पददलित करते थे, क्रमशः वे एकदम असहाय हो गये, उस अत्याचार से वह ग़रीब लोग यह तक भूल गये कि वह मनुष्य हैं। सैकड़ों शताब्दियों से वह लकड़ी काटते आ रहे हैं और जल ढो रहे हैं। क्रमशः उनके मन में यह विश्वास हो रहा है कि वह ग़ुलाम ही पैदा हुए हैं, लकड़ी काटने और कुयें से जल निकालने के लिये ही उनका जन्म हुआ है। और अगर उनके प्रति दया रखने वाला कोई मनुष्य दो एक बातें कहता है तो आज-कल के शिक्षित लोग इन पददलित जातियों की उन्नति साधन के कार्यों के करने में संकोच का अनुभव करते हैं।

हमी लोगों ने देश के नीच जातियों को दलित कर रखा है।

केवल यही नहीं, मैं वह भी देखता हूँ कि वे पाश्चात्य देशों के वंशानुक्रमिक संक्रमण और उस तरह के अन्यान्य तुच्छ मतों की सहायता से ऐसे पशुतापूर्ण और राक्षसी हेतुवाद दिखलाते हैं—जिससे दरिद्रों के ऊपर अत्याचार करने और उन्हें पशु जैसा बनाने की अधिक सुविधा होती है। अमेरिका धर्म सम्मेलन में और लोगों के साथ एक निग्रो-युवक भी आया

वंशानुक्रमिक संक्रमण मत क्या बिल्कुल ठीक है?

था—वह ठेठ अफ्रीका का हवशी था। उसने एक सुन्दर भाषण दिया था। मुझे इस युवक के सम्बंध में कौतूहल हुआ, मैंने उससे बीच बीच में बातें की, मगर उसके सम्बंध में विशेष न जान सका। कुछ दिन के बाद इंगलैंड में कुछ अमेरिकनों से मेरी मुलाकात हुई, उन्होंने मुझसे उस युवक के सम्बन्ध में यह किस्सा कहा;—'यह युवक मध्य अफ्रिका के एक दलपति हवशी का पुत्र है, किसी कारण से एक दूसरा दलपति उसके पिता से नाराज़ हुआ और उसे और उसकी स्त्री को मारकर उसका मांस रांधकर खा गया। उसने इस बालक को भी मार कर उसका मांस खाने को आदेश दिया था, लेकिन वह बालक किसी तरह भाग कर बहुत दुःख उठाते हुए सैकड़ों कोस चलकर समुद्र के किनारे पहुँचा—वहाँ से एक अमेरिकन जहाज़ में चढ़कर अमेरिका आया है।' उस बालक ने इतनी सुन्दर वक्तृता दी! इस प्रकार की घटना को देखकर वंशानुक्रमिक संक्रमण में कैसे आस्था रह सकती है?

हे ब्राह्मणो! यदि वंशानुक्रमिक भाव संक्रमण नियम के अनुसार ब्राह्मण विद्या सीखने के लिये अधिक उपयुक्त हैं तो ब्राह्मणों की शिक्षा पर अर्थ व्यय न कर चाण्डाल जाति की शिक्षा के लिये सारा धन खर्च करो। दुर्बलों की पहले सहायता करो, क्योंकि दुर्बलों की सहायता करना ही पहले आवश्यक है। यदि ब्राह्मण बुद्धिमान ही पैदा होता है तो वह किसी की सहायता के बिना ही शिक्षा ग्रहण कर सकता है। अगर और जातियाँ उतनी बुद्धिमान नहीं हैं तो उन्हें ही केवल शिक्षा देनी

चाहिये—उनके लिये ही शिक्षक नियुक्त करना चाहिये। मुझे तो यही न्याय और बुद्धि-संगत जान पड़ता है। इसलिये इन दरिद्रों, भारत के इन पददलित जातियों को उनका प्रकृत स्वरूप बतलाना आवश्यक है। जाति-विशेष, सबल-निर्बल का विचार न कर प्रत्येक स्त्री पुरुष को, प्रत्येक लड़के लड़की को सिखलाओ, बतलाओ कि सबल-दुर्बल, ऊँच-नीच सभी के भीतर वह अनन्त आत्मा विद्यमान है, इसलिये सभी महान् बन सकते हैं, सभी साधु बन सकते हैं। सभी लोगों के सामने उच्च स्वर में कहो,—उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। कठोपनिषद् । १४ । उठो, जागो, जब तक अन्तिम लक्ष्य पर न पहुँचो, ब तक निश्चिन्त न रहो। उठो, जागो, अपने को दुर्बल समझकर तुम जो मोहाच्छन्न हो रहे हो, इसे दूर कर दो। कोई वास्तव में दुर्बल नहीं है, आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है। उठो, अपने स्वरूप को प्रकाशित करो, तुम्हारे भीतर जो ईश्वर निवास करते हैं, उनकी उच्चस्वर से घोषणा करो, अस्वीकार न करो। हमारी जाति के अन्दर घोर आलस्य, दुर्बलता और मोह समा गया है। ऐ हिन्दुओ! मोह-जाल को काट डालो। इसका उपाय तुम्हारे शास्त्रों में ही दिया हुआ है। तुम अपने अपने स्वरूप की चिन्ता करो और सर्वसाधारण को भी उसका उपदेश करो। घोर मोह-निद्रा में पड़े हुए जीवात्मा की निद्रा भंग करो। आत्मा के प्रबुद्ध होने पर शक्ति आयेगी, महिमा आयेगी, साधुता आयेगी, पवित्रता आयेगी, जो कुछ

अच्छी बातें हैं, सभी चली आयँगी। यदि गीता में मुझे कुछ सब से बढ़कर अच्छा लगता है तो ये दो श्लोक हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश के सार हैं, महा बलप्रद हैं।

समंसर्वेषु भूतेषु तिष्ठतं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्व विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ १३ । २७

समं पश्यन्हिसर्वत्र समवस्थितमीश्वरं ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ १३ । २८

विनाशवान् सब प्राणियों में अविनाशी परमेश्वर को जो सम भाव से अवस्थित देखते हैं, वही यथार्थ में दर्शन करते हैं। इसका कारण यह है कि ईश्वर को सर्वत्र समभाव से अवस्थित देखकर अपनी आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते; इसलिये परम गति को प्राप्त होते हैं।

इसलिये यह देखा जाता है कि वेदान्त के प्रचार द्वारा इस देश तथा अन्यान्य देशों में काफी लोकहितकर कार्य हो सकते हैं। इस देश में एवं अन्यत्र समस्त मनुष्य जाति के दुःख दूर करने और उन्नति के लिये परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समभाव से अवस्थित रहना इन दो तत्वों का प्रचार करना होगा। जहाँ कहीं भी अन्याय दिखलाई पड़ता है, वहीं पर अज्ञान दिखलाई पड़ता है। मैंने अपने अनुभव से यह जाना है और हमारे शास्त्रों में भी लिखा है कि भेदबुद्धि के पैदा होने से ही सभी खराबियाँ पैदा होती हैं, और अभेद बुद्धि के होने पर—

सभी विभिन्नता के रहते हुए भी वास्तव में एक ही सत्ता है, इस पर विश्वास करने पर—सब तरह का कल्याण होगा। यही वेदान्त का सब से ऊँचा आदर्श है।

तो भी बातों में केवल आदर्श में विश्वास रखना एक बात है, और प्रतिदिन के जीवन में प्रत्येक छोटे बड़े काम में उस आदर्श का निभाना एक दूसरी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिखला देना अच्छी बात है—किन्तु इस आदर्श तक पहुँचने का अच्छा मार्ग कौन सा है? यहाँ स्वभावतः वही कठिन प्रश्न आ उपस्थित होता है—जो आज कई शताब्दियों से सर्वसाधारण के मन में विशेष भाव से जाग रहा है—वह प्रश्न और कुछ नहीं—जाति भेद और समाज संस्कार विषयक वही पुरानी समस्या है। मैं यहाँ पर एकत्रित सभी श्रोताओं से खोलकर कहना चाहता हूँ मैं जाति-भेद की प्रथा उठानेवाला अथवा केवल समाज-सुधारक नहीं हूँ। जातिभेद वा समाज-सुधार के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम चाहे कोई भी जाति हो, इसमें कोई हानि नहीं,—लेकिन अपनी जाति के कारण तुम दूसरी जाति से घृणा न करो। मैं सब प्रेमियों पर प्रेम रखता हूँ, इस तत्व का प्रचार करो और मेरा यह उपदेश—विश्वात्मा की सर्व-व्यापकता और समत्व रूपी वेदान्त के इस महान् तत्व पर निर्भर करता है।

प्रायः पिछले सौ वर्षों से हमारा देश समाज-सुधारकों तथा उनके तरह तरह के प्रस्तावों से पट गया है! इन समाज-सुधारकों

के प्रस्तावों के विरुद्ध मुझे कुछ कहना नहीं है। इनमें से अधि-क़ांश लोगों के उद्देश्य बहुत अच्छे हैं। और किसी किसी विषय में उनके उद्देश्य बहुत ही प्रशंसनीय हैं। किन्तु इससे यह साफ़ झलकता है कि इन सौ वर्षों में समाज-सुधारकों के आन्दोलन का कुछ नतीजा नहीं निकला है; देश का कुछ भला नहीं हुआ है, सभा-मञ्च से लम्बी लम्बी स्पीचें दी गई हैं,—हिन्दू जाति और हिन्दू सभ्यता के मस्तक पर .खूब निन्दा और गालियों की बौछार हुई है, किंन्तु तो भी समाज का वास्तव में कोई उपकार नहीं हुआ है। इसका कारण क्या है? कारण ढूँढ़ निकालना बहुत कठिन नहीं है। यह निन्दा-शिकायत और गालियों की बौछार ही इसका कारण है। पहले, जैसा मैं पहले ही कह चुका हूँ, हमें अपनी जातीय विशेषता को रक्षित रखना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि और जातियों से हमें बहुत कुछ सीखना होगा, लेकिन दुःख के साथ मुझे कहना पड़ता है कि हमारे अधिकांश आधुनिक संस्कार पाश्चात्य कार्य प्रणाली का अनुकरण मात्र है। भारत में कभी इसके द्वारा सुधार नहीं हो सकता। इसी कारण से ही हमारे वर्तमान संस्कार सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों का कुछ परिणाम नहीं हो रहा है। दूसरे, यदि हम किसी का भला चाहते हों तो निन्दा और गाली-गलौज करने से अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकते। हमारे समाज में जो बहुत से दोष हैं, उसे साधारण बालक भी देख सकता है और भला किस समाज में दोष नहीं है? मेरे भाइयो, इस अवसर पर मैं आप

लोगों से कहे देता हूँ कि मैंने संसार की जिन जातियों को
देखा है, उन सभी जातियों की तुलना करने
समाज सुधारक के पर मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि हमारी
असफल होने का जाति ही और सब जातियों की अपेक्षा धर्मात्मा
कारण—दूसरी नीति परायण है और हमारे सामाजिक विधान—
जातियों का उनके उद्देश्य और कार्य प्रणाली पर विचार
अनुकरण और करने से देखा जाता है—मनुष्य जाति को सुखी
वर्तमान समाज बनाने के लिये हैं। इसी कारण से मैं किसी
को गालियां देना तरह का सुधार नहीं अधिक उपयुक्त चाहता।
हमारा आदर्श है जातीय मार्ग पर समाज की
उन्नति, उसका विस्तार। जिस समय मैं अपने देश के प्राचीन
इतिहास की आलोचना करता हूँ, उस समय मैं सम्पूर्ण संसार
में ऐसा देश नहीं देख पाता हूँ जिसने मनुष्य
उन्नति का उपाय की मानसिक उन्नति के लिये इतना किया है।
जातीय भाव से इसी कारण से मैं अपनी जाति को किसी तरह
समाज का संगठन की निंदा या गाली नहीं दे सकता। मैं अपनी
जाति से कहता हूँ, जो कुछ किया है, बहुत ठीक
हुआ है, और भी अच्छा करने का प्रयत्न करो।' इस देश में प्राचीन
काल में बहुत बड़े बड़े कार्य हुए हैं लेकिन अब भी बड़े बड़े कार्य करने
का काफी मौका है। तुम लोग निश्चय रूप से जानो कि हम लोग
एक स्थान पर चुपचाप नहीं रह सकते। अगर एक स्थान पर
रहें तो हमारी मौत ही समझिये। हमें या तो आगे बढ़ना होगा

या पीछे हटना होगा। या तो हमें उन्नति करनी होगी नहीं तो हमारी अवनति होगी। हमारे पुरुखों ने प्राचीन काल में बड़े बड़े कार्य किये हैं, लेकिन हमें उनसे बढ़कर कार्य करने होंगे और उनसे भी बढ़कर महान कर्मों की ओर अग्रसर होना होगा। इस समय पीछे हट कर अवनत होना किस तरह हो सकता है? यह कभी नहीं हो सकता। ऐसा होते देखा नहीं जा सकता। पीछे हटने से जाति का अधःपतन और मृत्यु होगी। इसलिये आगे बढ़ो और बड़े बड़े कर्मों का अनुष्ठान करो, यही आप लोगों से मुझे कहना है।

आगे बढ़ो

मैं कोई सामयिक समाज-सुधारक नहीं हूँ। मैं समाज के दोषों को दूर करने की चेष्टा नहीं करता। मैं आप लोगों से कहता हूँ, आप लोग आगे बढ़िये और हमारे पुरुषों ने समस्त मनुष्य जाति की उन्नति के लिये जो सर्वाङ्ग सुन्दर प्रणालियाँ चलाई हैं उन्हीं प्रणालियों से चल कर उनके उद्देश्य को सब तरह से कार्य रूप में परिणत कीजिये। आप लोगों से मुझे यही कहना है कि आप लोग सम्पूर्ण मनुष्य का एकत्व और मानव जाति के स्वाभाविक ईश्वरत्व भाव रूपी वेदान्तिक आदर्श को और भी अधिक प्राप्त करो। अगर मुझे समय मिलता तो मैं आप लोगों को बड़ी खुशी से दिखला देता कि इस समय हम लोगों को जो जो करना है, उसमें से प्रत्येक कार्य को हमारे स्मृतिकार हजारों वर्ष पहले ही कह चुके हैं और इस समय हमारे जातीय आचार व्यवहार में जो जो परिवर्तन हो रहे हैं और भविष्य में जो जो होंगे, उन्हें भी उन्होंने

पहले ही समझ लिया था। वे भी जाति-भेद को लोप करने वाले थे, तो भी आजकल के लोगों की तरह नहीं! वे लोग जाति-भेद को उठाने का यह अर्थ नहीं समझते थे कि शहर के सब लोग मिलकर एक साथ मद्य मांस उड़ावें अथवा जितने मूर्ख और पागल मिलें, जिस समय जहाँ पर इच्छा हो, विवाह करलें और देश को पागलखाने के रूप में परिणत करदें अथवा वे यह भी विश्वास नहीं करते थे कि विधवाओं के पतियों के संख्या के अनुसार किसी जाति की उन्नति का परिमाण लगाया जा सकता है। ऐसा करके किसी ने उन्नति की है ऐसी जाति तो आज तक हमने कहीं नहीं देखी है।

हमारे पुरखों द्वारा चलाये सामाजिक नियमों को वर्तना ही समाज की सर्वांगीण उन्नति है

ब्राह्मण ही हमारे पूर्वपुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में ब्राह्मणों के आदर्श चरित्र उज्ज्वल अक्षरों में लिखे गये हैं। यूरोप के श्रेष्ठ धर्माचार्य तक अपने पुरखों को उच्च वंश का सिद्ध करने के लिये हजारों रुपये खर्च करते थे और जब तक वे यह सिद्ध न कर लेते थे कि पर्वतवासी यात्रियों को दिन-दहाड़े लुटवानेवाले कोई बड़ा अत्याचारी व्यक्ति उनके पूर्व पुरुष थे, तब तक उन्हें चैन नहीं मिलता था। दूसरी ओर भारत के बड़े बड़े राजघराने, कौपीनधारी जंगल में रहने वाले; फल मूल आहार करने वाले किसी वेदपाठी ऋषि-मुनि से उनके वंश उत्पत्ति हुई है यही प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। यहाँ पर अगर तुम प्राचीन काल के किसी ऋषि को अपने पूर्व पुरुष के रूप

में सिद्ध कर सको तब तो उच्च वंश के हो, नहीं तो नहीं। इसलिये हम लोगों के आभिजात्य का आदर्श अन्यान्य जातियों से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक भावों वाले तथा महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। आदर्श ब्राह्मण से मैं क्या समझता हूँ? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है जिसमें सांसारिकता एक बारगी न हो और जिसमें प्रकृत ज्ञान काफ़ी हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। आप लोगों ने क्या सुना नहीं है। शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मणों के लिये कोई कानून नहीं है, वे राजाओं के शासनाधीन नहीं—उनके लिये प्राण-दण्ड नहीं। ये बातें बिल्कुल सची हैं। स्वार्थी मूर्ख लोग इन बातों की जैसी व्याख्या करते हैं, उस भाव से इसे न समझकर, प्रकृत मौलिक वेदान्तिक भाव में इसे समझने की चेष्टा करो। अगर ब्राह्मण कहने से ऐसे व्यक्ति का बोध हो जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर दिया है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम का प्रचार करने के लिये ही है,—जो देश केवल ऐसे ब्राह्मणों - सत् स्वभाववाले, धर्मपरायण स्त्री पुरुषों से भरा हुआ है, वह जाति और देश सब तरह से विधि-निषेध-रहित होगा, इसमें आश्चर्य क्या है? ऐसे मनुष्यों के शासन के लिये सेना-सामन्त, पुलिस आदि की क्या आवश्यकता है? उन पर किसी के शासन करने का क्या प्रयोजन? उनके लिये भी किसी शासन के अधीन रहने की क्या ज़रूरत?

वे साधु प्रकृति महात्मा थे—वे ईश्वर के अन्तरंग स्वरूप थे। और हम लोग शास्त्रों में देखते हैं कि सत्ययुग में एकमात्र

ब्राह्मण जाति ही रहती थी। महाभारत में देखने में आता है
कि पहले सारी पृथ्वी में ब्राह्मण ही ब्राह्मण थे, क्रमशः ज्यों ज्यों
उनकी अवनति होने लगी, त्यों त्यों वे विभिन्न जातियों में विभक्त
होने लगे; फिर जब युगचक्र घूमने पर उस सत्ययुग का
अभ्युदय होगा, उस समय सभी ब्राह्मण होंगे। इस समय युग-
चक्र घूम कर सत्य युग के अभ्युदय की सूचना दे रहा है, मैं
इस विषय की ओर आप लोगों की दृष्टि आकर्षित करता हूँ।
इसलिये ऊँच जाति वालों को नीचा करके, आहार-विहार में
मनमानी करने, थोड़े से सुख के लिये अपने अपने वर्णाश्रम की
मर्य्यादा उल्लंघन करने से जातिभेद की समस्या हल न होगी,
लेकिन हम लोगों में से प्रत्येक ही यदि वेदान्त धर्म के निर्देशों
का पालन करें, प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक बनने का प्रयत्न करे,
प्रत्येक आदर्श ब्राह्मण होवे, तभी इस जाति भेद की समस्या
हल होगी। आप लोग चाहे आर्य अनार्य, ऋषि, ब्राह्मण अथवा
अत्यन्त नीच अन्त्यज जाति-कोई क्यों न हों, भारतभूमि में
रहनेवाले सभी लोगों के समक्ष आपके पुरखों
केवल भारत को का एक महान् आदर्श है; वह आदर्श यह है;
ही समूचे दुनिया चुपचाप बैठे रहने से काम न चलेगा उत्तरोत्तर
को इस आदर्श उन्नति करनी पड़ेगी। ऊँची जातियों से लेकर
में ढालना होगा नीची जाति (चाण्डाल) तक सभी लोगों को
आदर्श ब्राह्मण बनने का प्रयत्न करना होगा।
वेदान्त का यह आदर्श केवल भारत के ही लिये है, नहीं, सम्पूर्ण

जगत को इस आदर्श के अनुसार गठित करना होगा हमारे जाति-भेद का यही लक्ष्य है। इसका उद्देश्य है कि धीरे धीरे सम्पूर्ण मानव जाति जिससे आदर्श धार्मिक—अर्थात् क्षमा, धृति, शौच, शान्ति, उपासना तथा-ध्यान परायण बनें। इस आदर्श का अवलम्बन करने से ही मनुष्य जाति क्रमशः ईश्वर सायुज्य को प्राप्त कर सकता है।

इस उद्देश्य को कार्य रूप में परिणत करने का उपाय क्या है मैं आप लोगों को फिर स्मरण दिला देता हूँ कि शाप, निन्दा और गाली गलौज से कोई अच्छा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। कई वर्षों से इस प्रकार की चेष्टा हुई है, लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला है। केवल प्रेम और सहानुभूति द्वारा ही सुफल प्राप्ति की आशा की जा सकती है। किस उपाय से यह महान् उद्देश्य कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है, यह एक कठिन समस्या है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये मैं जो कुछ करना चाहता हूँ और इस सम्बन्ध में दिन दिन मेरे मन में जो नये नये भाव पैदा होते जाते हैं, उन सबको विस्तृत रूप से कहने के लिये मुझे कई व्याख्यान देने पड़ेंगे। अतः मैं आज इस स्थान पर वक्तृता का उपसंहार करूँगा। हिन्दुओ, तुम लोगों को केवल यही याद दिलाना चाहता हूँ कि हमारा यही जातीय जहाज़ शताब्दियों से हिन्दू जाति को पार करता आ रहा है। सम्भवतः आजकल उसमें कई छेद हो गये हैं, यह कुछ पुराना भी हो सकता है। यदि यही बात है तो भारत माता की हम

सन्तानों का यह कर्तव्य होना चाहिये कि हम लोग उन छेदों को बन्द करें और जहाज़ की मरम्मत भी करें। अपने सभी देशवासियों को इस विपत्ति का हाल बताना होगा, जिससे सब लोग जग जायें और इस तरफ़ चित्त लगायें। मैं भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक ऊँचे स्वर से लोगों को पुकार पुकार कर कहूँगा कि लोग अपने कर्तव्य पालन में लगें। मान लो, मेरी बात न मानें-तो भी मैं किसी को गाली या शाप न दूँगा। हमारी जाति ने प्राचीन काल में बहुत बड़े बड़े कार्य किये हैं। अगर भविष्य में हम लोग बड़े बड़े कार्य न कर सकें, तो एक साथ शान्ति के साथ डूब मरेंगे। हम लोग इसी पर सन्तोष करेंगे कि हम लोग एक साथ ही मर रहे हैं। आप लोग देश हितैषी बनिये-जिस जाति ने भूत काल में हमारे लिये इतने बड़े बड़े कार्य किये हैं, उसी जाति को दिलो जान से प्यार कीजिये। मेरे देशवासियो, मैं जितना ही दूसरी जातियों के साथ अपनी जाति की तुलना करता हूँ, उतना ही आप लोगों पर मेरा प्रेम बढ़ता जाता है। आप लोग शुद्ध, शान्त और सरल स्वभाव के हैं, और आपने ही इतने दिनों तक अत्याचार पर अत्याचार सहे हैं, यह मायावी जड़ जगत की बड़ी भारी पहेली है। चाहे जो कुछ हो, आप लोग भ्रम में न पड़ें। अन्त में आध्यात्मिकता की ही जय होगी। इस समय हमें कार्य करना ही पड़ेगा-केवल देश की निन्दा करने से काम न चलेगा। इस हमारी पवित्र भारतभूमि के पुराने आचार विचार और प्रथा की निन्दा न करना; अत्यन्त कुसंस्कार

से भरी प्रथाओं के विरुद्ध भी निन्दात्मक कोई शब्द न कहना, क्योंकि उनके द्वारा भी प्राचीन काल में कुछ न कुछ लाभ ही हुए हैं। यह बात सदा मन में रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओं का उद्देश्य जितना ऊँचा है, उतना संसार के और किसी देश का नहीं है। मैं संसार के सभी देशों में जाति भेद देखता हूँ किन्तु यहाँ पर उसका उद्देश्य जितना उच्च है, उतना कहीं पर भी नहीं। इसलिये जब जाति भेद अनिवार्य है तो आर्थिक दृष्टि से जो जाति भेद है, उसकी अपेक्षा पवित्रता साधन और आत्मत्याग के ऊपर प्रतिष्ठित जाति भेद को तो अच्छा ही समझना होगा। इसलिये निन्दा, शिकायत को एकदम त्याग ही दीजिये, अपना मुँह बन्द कर दीजिये और हृदय खोल दीजिये। इस देश और सारी दुनिया का उद्धार कीजिये। आप लोगों में से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार उसी पर है। वेदान्त का प्रकाश प्रत्येक घर में पहुँचाइये, हरेक घर में वेदान्त के आदर्श पर जीवन गठित कीजिये-प्रत्येक आत्मा में जो ईश्वरीय शक्ति छिपी हुई है, उसे जागृत कीजिये। ऐसा करने से चाहे जितनी थोड़ी सफलता क्यों न मिले, तुम्हारे मन में यह संतोष होगा कि तुमने बड़े भारी कार्य के लिये जीवन बिताया है और महत् कार्य के लिये प्राण विसर्जित किये हैं। जिस रूप में हो, महान कार्य के सिद्ध होने से ही मानव जाति का इस लोक और परलोक में कल्याण होगा।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग की अनुपम पुस्तकें

१—ईश्वरीय-बोध—परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, संसार भर में प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्ण जी ने ऐसे मनोरञ्जक और सरल, सब की समझ में आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। मूल्य सिर्फ ।॥)

२—सफलता की कुंजी—पाश्चात्य देशों में वेदान्त का डंका पीटने वाले स्वामी रामतीर्थ के Secret of Sucess नामक अपूर्व निबंध का अनुवाद है। पुस्तक क्या है जीवन से निराश और विमुख पुरुषों के लिये संजीवनी और नवयुवकों के लिये संसार में प्रवेश करने की वास्तविक कुंजी है। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता—किस प्रकार जीवन सुखमय बनाया जा सकता है? इसकी उत्तम से उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ़ जाइये। कितने सरल उपायों से पूर्ण सुखमय जीवन हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। आज दिन योरुप की प्रत्येक भाषा में इसके हजारों संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ॥=)

४—भारत के दशरत्न—यह जीवनियों का संग्रह है। इसमें भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ रामदास, श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवन-चरित्र हैं। मूल्य ॥)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—इसको पढ़कर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्यनाश से बचता ही है किन्तु पापात्मा भी निसंशय पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल भी तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। थोड़े ही समय में इसके नव संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ।॥)

६—हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?—प्राचीन काल की तरह भारतवासी अब दीर्घजीवी क्यों नहीं होते ? एक मात्र कारण यही है कि हमारे नित्य के खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों में वर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हें हम भूल गये हैं "हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?" को पढ़ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। मूल्य १)

७—वैज्ञानिक कहानियाँ—महात्मा टालस्टाय लिखित वैज्ञानिक कहानियाँ, विज्ञान की शिक्षा देने वाली तथा अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक है। मूल्य ।)

८—वीरों की सच्ची कहानियाँ—यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है, यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। मूल्य केवल ।।=)

९—आहुतियाँ—यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते २ मृत्यु का आवाहन करते हैं ? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं ? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ाते हैं ? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ।।।)

१०—जगमगाते हीरे—प्रत्येक आर्य सन्तान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है। इसमें राजा राममोहन राय से लेकर आज तक के भारत के प्रसिद्ध महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है। यदि रहस्यमयी, मनोरंजक, दिल में गुदगुदी पैदा करने वाली महापुरुषों की जीवन घटनाएं पढ़नी हैं, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये मूल्य। केवल १)

११—पढ़ो और हँसो—विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे, पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है। मूल्य ।।)

१२—मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता—मनुष्य के शरीर के अंगों और उनके कार्य इस पुस्तक में बतलाये गये हैं। मूल्य ।=)

१३—फल उनके गुण तथा उपयोग—यह बात निर्विवाद है कि फलाहार सब से उत्तम और निर्दोष आहार है। परन्तु आज तक कोई ऐसी पुस्तक न थी जिससे लोग यह जान सकें कि कौन फल लाभकरी हैं और कौन विकार करनेवाले हैं। इसी अभाव को दूर करने के लिये यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। मू० केवल १)

१४—स्वास्थ्य और व्यायाम—इस पुस्तक को लेखक ने अपने निज के अनुभव तथा संसार प्रसिद्ध पहलवान सैंडो, मूलर तथा प्रो० राममूर्ति के अनुभवों के आधार पर लिखा है इसमें लड़कों और स्त्रियों के उपयुक्त भी व्यायाम की विधि बताने के साथ ही साथ चित्र भी दिये गये हैं जिससे व्यायाम करने में सहूलियत हो जाती है। मूल्य अजिल्द का १।।) सजिल्द का २)

१५—धर्मपथ—प्रस्तुत पुस्तक में महात्मा गाँधी के ईश्वर, धर्म तथा नीति सम्बन्धी लेखों का संग्रह किया गया है जिन्हें उन्होंने समय समय पर लिखे हैं! यह सभी जानते हैं कि महात्मा गाँधी केवल राजनीतिक नेता ही नहीं, वरन् वर्तमान युग के धार्मिक सुधारक तथा युगप्रवर्तक हैं। ऐसे महात्मा के धार्मिक विचारों से परिचित होना प्रत्येक धर्मावलम्बी का परम कर्तव्य है। मू० ।।।)

१६—स्वास्थ्य और जलचिकित्सा—जलचिकित्सा के लाभों को सब लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। प्रस्तुत पुस्तक सब के लिये बहुत उपयोगी है। हिन्दी पाठकों के चिरपरिचित—बा० केदारनाथ गुप्त ने इस पुस्तक को लिख कर स्वास्थ्य और शरीर रक्षा की इच्छुक जनता का बड़ा उपकार किया है। मू० १।।)

१७—बौद्ध कहानियाँ—महात्मा बुद्ध का जीवन और उपदेश कितना महत्वपूर्ण, पवित्र और चरित्र-निर्माण में सहायक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस पुस्तक में उन्हीं महात्मा के

उपदेश कहानियों के रूप में दिए गए हैं। इनकी घटनायें सच्ची हैं प्रत्येक कहानी रोचक और सुन्दर है। पुस्तक का मूल्य १)

१८—भाग्य-निर्माण—आज बहुत से नवयुवक सब तरह से समर्थ और योग्य होने पर भी अकर्मण्य हो भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं। कोई उद्यम या परिश्रम का कार्य नहीं करते हैं। यह पुस्तक विशेषकर ऐसे नवयुवकों को लक्ष्य करके लिखी गई है। इस पुस्तक को प्रत्येक पृष्ठ के पढ़ने से नवयुवकों में उत्साह, स्फूर्ति तथा नवजीवन प्राप्त होगा। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मू० १।।) है।

१९—स्त्री और सौन्दर्य—इस पुस्तक में सौन्दर्य और स्वास्थ्य रक्षा के लिये ऐसे सुगम साधन तथा सरल व्यायाम बतलाये गये हैं जिनके नियमित रूप से बर्तने से ५० वर्ष की अवस्था तक पहुँचने पर भी स्त्रियाँ सुन्दरी और स्वस्थ बनी रह सकती हैं। परिवर्द्धित संस्करण का [illegible]० ३)

२०—वेदान्त धर्म—इसमें देश-विदेश में वेदान्त का झंडा फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द के [illegible] तवर्ष में वेदान्त पर दिये हुए भाषणों का संग्रह है। स्वामी जी [illegible] ापण कितने प्रभावशाली, जोशीले और सामयिक हैं, इसे बतल[illegible] आवश्यकता नहीं। मू० १)

२१—मदिरा—हिन्दी के हो[illegible] लेखक बा० तेजनारायण काक 'क्रान्ति' लिखित सुन्दर [illegible]ाव्य है। इसकी एक एक लाइन के पढ़ने से आप मतवा[illegible] जायँगे। सजिल्द १)

२२—कवितावली राम[illegible]—गोस्वामी तुलसीदास रचित इस पुस्तक को कौन नहीं जानता। इस पुस्तक में विस्तृत [illegible] लिखकर कवि की जीवनी और कविता पर पूरा प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक कवित्त की सरल टीका और कठिन शब्दों [illegible] अर्थ तथा अलंकार भी दिये गये हैं। मू० १।।)